अगस्त 2018

आई.एस.ओ. 9001: 2008 संगठन

मूल्य: ₹30

भाकृअनुप
ICAR

खेती

इस अंक में

वर्ष भर करें सूर्यमुखी की उन्नत खेती

मुर्गियों में खनिज एवं विटामिन की कमी से होने वाले रोग

मार्कर तकनीक से गन्ना फसल सुधार

फसल अवशेषों को जलाने से वातावरण पर दुष्प्रभाव

www.icar.org.in

कृषि से मत्स्य पालन तक बहुमुखी लोकताक झील

ओ.एन. तिवारी[1], इंद्रामा देवी[2], डॉली वाटल धर[1], के. अन्नपूर्णा[1] और ऋचा टंडन[3]

लोकताक झील उत्तर-पूर्वी भारत की सबसे बड़ी ताजे पानी की झील है। यह फूम्डीस (विघटन के विभिन्न चरणों में वनस्पति, मिट्टी और कार्बनिक पदार्थों के द्रव्यमान) के लिए प्रसिद्ध है। कीबुल लामजाओ दुनिया में केवल एक चल राष्ट्रीय उद्यान है। यह मणिपुर भारत में मोइरांग के पास स्थित 40 कि.मी. (15 वर्ग मील) के एक क्षेत्र को शामिल करता है। यह झील के दक्षिणी किनारे पर स्थित है। लोकताक झील को मार्च 1990 में अंतर्राष्ट्रीय महत्व के जलीय क्षेत्रों की सूची के लिए नामित किया गया था और जून 1993 में उन साइटों के मॉन्ट्रो रिकॉर्ड्स में अंकित किया गया था, जिनका पारिस्थितिक चरित्र मानवीय हस्तक्षेप के कारण बदल जाएगा। झील के विभिन्न आवास समुदायों में जनवरी 2000 और दिसंबर 2002 के बीच किए गए वैज्ञानिक सर्वेक्षण के दौरान निवास स्थान की विविधता के साथ एक समृद्ध जैव विविधता दर्ज की गई है। झील की समृद्ध जैविक विविधता में 233 प्रजातियां जलीय मैक्रोफाइट्स के उद्भव, डुबकीदार, निःशुल्क-फ्लोटिंग और रूटिंग फ्लोटिंग लीफ पाई जाती हैं।

लोकताक झील को मणिपुर की जीवन रेखा माना जाता है। राज्य के लोगों के सामाजिक, आर्थिक, कृषि, मछली पालन और सांस्कृतिक जीवन का यह एक अभिन्न अंग है। यह बाढ़ नियंत्रण में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। फ्लोटिंग द्वीप समूह दुनिया भर की झीलों और आर्द्रभूमि क्षेत्रों में एक सामान्य प्रक्रिया है। इसे टुसॉक्स, फ्लोटन, फ्लोटेंट या सुड के नाम से जाना जाता है। यह पौधों की जड़ों और कार्बनिक पदार्थों से मिलती-जुलती चटाई वाले देशी या विदेशी पौधों से बनता है। अस्थायी द्वीपों की परिभाषा में छोटे (0.01 हैक्टर से भी कम) फ्री-फ्लोटिंग द्वीपसमूह और व्यापक, स्थिर, वनस्पतियुक्त मैट शामिल हैं, जो सैकड़ों हैक्टर पानी को शामिल कर सकते हैं। कीबुल लामजाओ नेशनल पार्क, झील के उत्तर-पूर्वी कोने में दुनिया में एकमात्र अस्थायी वन्यजीव अभ्यारण्य है। यह अस्थायी अभ्यारण्य एक बहुत ही दुर्लभ और अत्यंत सुरुचिपूर्ण हिरण का घर है, जिसे मृग हिरण या संगई के नाम से जाना जाता है। इसके सींग पीछे से आगे बढ़ते हैं और एक सतत, सुंदर वक्र में पीछे की ओर मुड़ते हैं। 1951

लोकताक झील

में संगई आधिकारिक रूप से विलुप्त हो गया था। लेकिन पशु प्रेमियों के आश्चर्य और राहत की बात यह है कि लोकताक झील में अभी भी फूम्डी में इसके रहने की सूचना है। पूर्व में यह मणिपुर के राजाओं की सुरक्षा में था। मनुष्य के लिए फूम्डी पर चलना मुश्किल है, यह पैरों के नीचे हिलता है और चलता रहता है। संगई को फूम्डी पर चलने में समस्या नहीं है। उनके पंजे और सींग, उन्हें फूम्डी के माध्यम से बिना डूबे रेज और घास पर झुकाव के साथ चलने के लिए सक्षम बनाते हैं। दुर्भाग्य से प्रत्येक वर्ष गुजरने वाले फूम्डी पतले और पतले होते जा रहे हैं, इसलिए संगई को स्वतंत्र रूप से चलने में मुश्किल होती है। फूम्डी के पतला होने के कारणों में से एक मुख्य कारण है कि ईथाई में बांध बना दिया गया है। यह लोकताक झील से जल निकासी को रोकने के लिए और जल स्तर को बनाए रखने और बिजली पैदा करने के लिए है। इस बैराज का निर्माण होने से पहले, शुष्क मौसम के दौरान, जब झील की गहराई कम हो गई, फूम्डी पर बढ़ने वाले रीड और अन्य वनस्पतियों की जड़ें झील के नीचे मिट्टी तक पहुंच सकती थीं और उनकी मोटाई को बनाए रखने के लिए पोषण कर सकती थीं।

सामाजिक-आर्थिक महत्व

यह झील मछली की महत्वपूर्ण प्रजातियों और खाद्य जलीय पौधों का सबसे

आवरण पृष्ठ III पर जारी

[1]नील हरित शैवाल का संरक्षण और उपयोग केंद्र, सुक्ष्म जीव विज्ञानं संभाग; भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012; [2]डीबीटी-जैव संसाधन और सतत विकास संस्थान, इंफाल-795001, मणिपुर; [3]वनस्पति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय (उत्तर प्रदेश)

भाकृअनुप
ICAR

खेती

कृषि विज्ञान द्वारा ग्रामोत्थान
की मासिक पत्रिका

वर्ष: 71, अंक: 4, अगस्त 2018

संपादन सलाहकार समिति

1. **डा. अशोक कुमार सिंह** — **अध्यक्ष**
   उप-महानिदेशक (कृषि विस्तार)
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
2. **डा. सतेन्द्र कुमार सिंह** — **सदस्य**
   परियोजना निदेशक
   कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
   भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली
3. **डा. आर.सी. गौतम** — **सदस्य**
   पूर्व डीन
   भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
4. **डा. एस.के. सिंह** — **सदस्य**
   निदेशक
   राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग
   नियोजन ब्यूरो, नागपुर
5. **डा. वाई.पी.एस. डबास** — **सदस्य**
   निदेशक (प्रसार)
   जी.बी. पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
   पंतनगर
6. **श्री सेठपाल सिंह** — **सदस्य**
   प्रगतिशील किसान
7. **श्री सुरेन्द्र प्रसाद सिंह** — **सदस्य**
   कृषि पत्रकार
8. **श्री अशोक सिंह** — **सदस्य सचिव**
   प्रभारी, हिन्दी संपादकीय एकक

संपादक
अशोक सिंह
संपादन सहयोग
सुनीता अरोड़ा

प्रधान प्रोडक्शन अधिकारी
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
सहायक मुख्य तकनीकी अधिकारी
अशोक शास्त्री

लेआउट डिज़ाइन
डा. वीरेन्द्र कुमार भारती
अशोक शास्त्री

व्यवसाय सम्पर्क सूत्र
सुनील कुमार जोशी
व्यवसाय प्रबंधक
दूरभाष: 011-25843657
E-mail: bmicar@icar.org.in
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद
कृषि अनुसंधान भवन, पूसा गेट, नई दिल्ली-12
एक प्रति: रु. 30.00 वार्षिक: रु. 300.00

E-mail: khetidipa@gmail.com

विषय-सूची

संपादकीय — **न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में वृद्धि का स्वागत, अशोक सिंह**

आवरण कथा
वर्ष भर करें सूर्यमुखी की उन्नत खेती 3
कमलेश मीना, अनुराधा रंजन कुमारी और आर.पी. शर्मा

कुक्कुट
मुर्गियों में खनिज एवं विटामिन की कमी से होने वाले रोग 6
के.पी. सिंह और प्रणीता सिंह

नई उपलब्धि
मार्कर तकनीक से गन्ना फसल सुधार 9
राघवेन्द्र कुमार, संगीता श्रीवास्तव और दिनेश कुमार

परिणाम
फसल अवशेषों को जलाने से वातावरण पर दुष्प्रभाव 12
सत्यम चौरिहा, हरेश्याम मिश्र और धीरेन्द्र कुमार

खाद्यान्न
गेहूं के ब्लास्ट रोग की रोकथाम 14
देवेन्द्र पाल सिंह, सुधीर कुमार, प्रेम लाल कश्यप और ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह

यंत्रीकरण
चने की यांत्रिक कटाई हेतु उपयुक्त प्रजातियां 15
ए.के. श्रीवास्तव, जी.पी. दीक्षित और एन.पी. सिंह

दलहन
मसूर की उन्नत प्रजातियों का बीज उत्पादन 17
ज्ञानेन्द्र सिंह, चन्दू सिंह, रमेश चन्द, गणपति मुक्री और संजय कुमार

जानकारी
आदिवासी किसानों के लिए कृषि वानिकी प्रणाली 21
होम्बे गौडा, प्रवीण जाखड़, कर्म बीर और एम. मधु

उपाय
कार्बनिक प्रदूषक-कारक, प्रभाव व निवारण 24
मोहन लाल दौतानियां, जे. के. साहा, सोनालिका साहू,
चेतन कुमार दौतानियां और अशोक कुमार पात्र

जांच
खाद्य मिलावट के जहर से स्वास्थ्य पर कहर 27
प्रतिभा जोशी, जे.पी.एस. डबास, निशि शर्मा, नफीस अहमद और गिरिजेश सिंह महरा

पशु पोषण
पशुओं के लिए जीवन रक्षक है अजोला 31
हेमलता सैनी और मोती लाल मीणा

विविध
सरसों की पैदावार बढ़ाने वाली नवीनतम कृषि तकनीक 34
बी.एल. जाट और आर.एल. मीना

तिलहन
अलसी का पौष्टिक महत्व एवं वैज्ञानिक खेती 37
अभय कुमार सिंह और आरती सिंह

बचाव
जैविक कीट प्रबंधन से फसल सुरक्षा 40
शंकर लाल और अरुण कुमार

कृषि कैलेण्डर
अगस्त के मुख्य कृषि कार्य 43
राजीव कुमार सिंह, विनोद कुमार सिंह, कपिला शेखावत,
प्रवीण कुमार उपाध्याय और एस.एस. राठौर

प्रकृति
कृषि से मत्स्य पालन तक-बहुमुखी लोकताक झील आवरण II और III
ओ.एन. तिवारी, इंद्रामा देवी, डॉली वाटल धर, के. अन्नपूर्णा और ऋचा टंडन

डिस्क्लेमर
लेखों में व्यक्त विचारों, जानकारियों, आंकड़ों आदि के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं, उनसे भाकृअनुप की सहमति आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित लेखों तथा अन्य सामग्री का कॉपीराइट अधिकार भाकृअनुप-डीकेएमए के पास सुरक्षित है। इन्हें पुन: प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की अनुमति अनिवार्य है।

संपादकीय

न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में वृद्धि का स्वागत

केंद्र सरकार द्वारा किसानों के व्यापक हितों को ध्यान में रखते हुए हाल ही में फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में बढ़ोतरी करने का महत्वपूर्ण फैसला लिया गया है। यह कदम किसानों को उनकी फसलों के बेहतर मूल्य दिलवाने के उद्देश्य से उठाया गया है। इसके अंतर्गत 14 खरीफ फसलों के न्यूनतम समर्थन मूल्य में कम से कम 50 प्रतिशत की वृद्धि की घोषणा की गयी है। इनके अलावा अन्य फसलों का भी एमएसपी बढ़ाने की घोषणा की गयी है। ऐसा देश में किसानों की आय बढ़ाने और लागत से कम मूल्य पर उपज की बिक्री करने की बाध्यता को देखते हुए किया गया है। इन 14 फसलों में धान, ज्वार, बाजरा, रागी, मक्का, अरहर, मूंग, उड़द, मूंगफली, सूर्यमुखी, सोयाबीन, रामतिल, तिल और कपास शामिल हैं। यह बढ़ोतरी 50 प्रतिशत (धान आदि) से लेकर 96 प्रतिशत (बाजरा) तक की गयी है। बम्पर फसल होने पर बाजार मूल्य में गिरावट आने से होने वाले नुकसान से कृषक समुदाय को बचाने के उद्देश्य से यह निर्णय लिया गया है। इस क्षेत्र के विशेषज्ञों की मानें तो यह फैसला देश के कृषि विकास में तेजी लाने और किसानों की आमदनी बढ़ाने में मील का पत्थर सिद्ध होगा।

इस निर्णय में यह भी स्पष्ट किया गया है कि फसल लागत की गणना करने में किन मदों को शामिल किया जाएगा। नए प्रावधान के अनुसार फसल लागत में श्रमिकों की मजदूरी, बैल श्रम/मशीन श्रम पर हुआ व्यय, पट्टे पर ली गयी भूमि का किराया, बीज, खाद-उर्वरक, कीटनाशक, सिंचाई खर्च आदि को शामिल किया जाएगा। इसके अतिरिक्त कृषि उपकरणों का मूल्य ह्रास तथा कृषक परिवार के श्रम को भी इस लागत में शामिल किया जाएगा। इस तरह से फसल की कुल लागत के साथ कम से कम 50 प्रतिशत मुनाफा जोड़कर न्यूनतम फसल खरीद मूल्य तय होगा। सरकारी एजेंसियां इसी आधार पर तयशुदा मूल्यों पर ही किसानों से वर्ष 2018-19 की खरीफ फसल की खरीद करेंगी।

इस सरकारी खरीद में बढ़ोतरी का फौरी तौर पर प्रत्यक्ष प्रभाव तो किसानों द्वारा ऐसी अधिक एमएसपी वाली फसलों की खेती को बड़े पैमाने पर अपनाने के रूप में देखने को मिल सकता है। ऐसे में यह कतई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि जल्द ही इन फसलों के उत्पादन में उल्लेखनीय बढ़ोतरी देखने को मिले। इस स्थिति में सरकारी एजेंसियों द्वारा खरीद की जाने वाली मात्रा में भी वृद्धि होनी स्वाभाविक है। इसके लिए समय रहते भण्डारण सुविधाओं की उपलब्धता सुनिश्चित करने पर अभी से ध्यान देना होगा अन्यथा खरीदा गया खाद्यान्न खुले में रखे जाने पर बर्बाद भी हो सकता है।

किसानों को भी समझ-बूझकर ही अपनी परंपरागत फसलों को छोड़कर अधिक समर्थन मूल्य वाली फसलों की ओर मुखातिब होना चाहिए, क्योंकि यह तो निश्चित है कि बम्पर फसल होने पर भी इसके बड़े हिस्से की बिक्री खुले बाजार में ही होगी। इसके पीछे एक कारण यह भी है कि सरकारी एजेंसियों द्वारा एक निर्धारित सीमा तक ही न्यूनतम समर्थन मूल्यों पर उपज की खरीद की जाती है। ऐसे में अधिकांश किसानों को बिचौलियों और आढ़तियों को सरकारी समर्थन मूल्य से कहीं कम दाम पर अपनी उपज बेचने को विवश होना पड़ सकता है। इसलिए भी वर्तमान समय में यह जरूरी है कि किसान भाई नगदी फसलों और कम समय में तैयार होने वाली फसलों को बड़े पैमाने पर अपनाने के बारे में गंभीरतापूर्वक विचार करें।

उम्मीद ही नहीं विश्वास भी है कि सरकार के इस निर्णय का अधिकाधिक लाभ किसान समुदाय को मिलेगा और उनके जीवन में खुशहाली के अवसर बढ़ेंगे।

(अशोक सिंह)

वर्ष भर करें सूर्यमुखी की उन्नत खेती

कमलेश मीना, अनुराधा रंजन कुमारी और **आर.पी. शर्मा**[1]
कृषि विज्ञान केन्द्र, भाकृअनुप-भारतीय सब्जी अनुसंधान सस्थान, मल्हना, देवरिया (उत्तर प्रदेश)

“विश्व में सोयाबीन व मूंगफली के बाद सूर्यमुखी का तिलहनी फसलों में तीसरा महत्वपूर्ण स्थान है। कम अवधि, सूखा सहनशीलता, अप्रदीप्तिकाल व सभी प्रकार की भूमि में उगने की क्षमता होने के कारण इसकी खेती विश्वभर में बड़े पैमाने पर की जाती है। हमारे देश में मूंगफली, सरसों एवं सोयाबीन के बाद तिलहनी फसलों में इसका चौथा स्थान है। इसमें लगभग 45-50 प्रतिशत तक उच्च गुणों से भरपूर तेल पाया जाता है। इसके तेल का रंग हल्का पीला व उच्च सुगंधयुक्त होता है। तेल का उपयोग कई प्रकार की खाद्य सामग्रियों के साथ-साथ सौंदर्य प्रसाधन बनाने में भी किया जाता है।”

सूर्यमुखी के बीजों से तेल आसानी से निकाला जा सकता है। इस तेल में लगभग 64 प्रतिशत लिनोलिक अम्ल पाया जाता है। यह मनुष्य के हृदय में कोलेस्ट्राल को कम करने में सहायक होता है। इसलिए सूर्यमुखी के तेल को हृदय रोगियों के लिए उत्तम माना जाता है। सूर्यमुखी की खली में लगभग 40-44 प्रतिशत प्रोटीन पाई जाती है, जिसका मुर्गियों व पशुओं के लिए आहार के रूप में उपयोग किया जाता है। इसके द्वारा 'बेबी फूड' भी तैयार किया जाता है। सूर्यमुखी के दानों को कच्चा व भूनकर भी खाया जाता है। यह विटामिन ए, डी व ई का अच्छा स्रोत है।

सूर्यमुखी को निम्न विशेषताओं के कारण हमारे देश में आसानी से उगाया जा सकता है:

- फोटो इंसेंसिटिव होने के कारण खरीफ, रबी एवं जायद सभी मौसम में इसकी खेती की जा सकती है।
- कम अवधि (80-120 दिनों) की फसल।
- सभी प्रकार की भूमि एवं जलवायु में उगने की क्षमता।
- अधिक बीज व तेल उत्पादन।
- उच्च गुणों से युक्त खाने योग्य तेल।
- खेती कम लागत में आसानी से की जा सकती है।
- कम जल आवश्यकता।
- बाजार में अच्छे दाम का मिलना।
- बीजों से तेल गांवों में उपलब्ध *घानी* द्वारा भी आसानी से निकाला जा सकता है।

जलवायु

इसकी खेती के लिए जमाव के समय ठंडा मौसम, जमाव के पश्चात से पकने की अवस्था तक गर्म व साफ मौसम की आवश्यकता होती है। फूल आते समय अधिक आर्द्रता, बादल व वर्षा का होना दाना बनने की अवस्था के लिए हानिकारक होता है। यदि पकते समय तापमान अधिक हो जाये तो लिनोलिक अम्ल की मात्रा कम होती

[1]राष्ट्रीय मृदा सर्वेक्षण एवं भूमि उपयोग नियोजन ब्यूरो, अमरावती रोड, नागपुर-440033 (महाराष्ट्र)

सूर्यमुखी की फसल में फूल आने की अवस्था

है। सूर्यमुखी फोटो इंसेंसिटिव फसल है। इसलिए इसकी खेती वर्ष भर सफलतापूर्वक की जा सकती है। सामान्यत: यह खरीफ में 80-90 दिनों, रबी में 105-130 दिनों एवं जायद में 110-115 दिनों में पककर तैयार हो जाती है।

प्रजातियां

खेती के लिए उन्नतशील संकुल व संकर सूर्यमुखी प्रजातियों को सारणी-1 में दर्शाया गया है।

भूमि का चयन

सूर्यमुखी की खेती मुख्य रूप से उदासीन, गहरी, अच्छा जल निकास एवं सिंचाई की उत्तम सुविधा वाली दोमट भूमि, जिसका पी-एच मान 6.5-8.5 के मध्य हो, में सफलतापूर्वक की जा सकती है।

भूमि की तैयारी

हल्की मिट्टी की 1 या 2 गहरी जुताई तथा दो जुताई हैरो द्वारा करनी चाहिए, ताकि खेत को खरपतवाररहित बनाया जा सके। मध्यम व भारी मिट्टी की वर्षा होने के बाद 2-3 जुताई हैरो द्वारा करने के पश्चात खेत को समतल कर बुआई करें।

बुआई का समय

सूर्यमुखी की बुआई वर्ष भर की जा सकती है। परंतु ऐसे समय पर बुआई नहीं करें, जब फूल व दाने बनते समय अधिक वर्षा हो और तापमान भी 38^0 सेल्सियस से अधिक रहे।

- खरीफ ऋतु में इसकी बुआई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के अंतिम सप्ताह तक।

सिंचाई प्रबंधन

खरीफ ऋतु में सूर्यमुखी को सिंचाई की कोई खास आवश्यकता नहीं होती। परंतु सूखा पड़ने की स्थिति में फूल आने से दाने बनने की अवस्था पर सिंचाई अवश्य करें। रबी एवं जायद में बुआई से पूर्व पलेवा करें ताकि बीजों का अच्छा व समान मात्रा में जमाव हो सके। रबी फसल में सामान्यत: 3 सिंचाइयां क्रमश: 4-5 पत्ती अवस्था, फूल आने पर व दाने बनते समय करनी चाहिए। जायद की फसल में 6-7 सिंचाइयां 10-15 दिनों के अंतराल पर करें।

सारणी-1. भारत के विभिन्न प्रांतों के लिए संस्तुत संकुल व संकर प्रजातियां

प्रदेश	संकर प्रजातियां	संकुल प्रजातियां
महाराष्ट्र	एमएसएफएच 8, केबीएसएच 1, एमएसएफएच 17, एलएसएच 1, एलएसएच 3, पीएसी 36, पीएसी 1091, एमएलएचएफएच 47, केबीएसएच 44, डीआरएसएच 1 एवं एलएसएफएच 35	मॉडर्न, सूर्या, एलएस 11, डीआरएसएफ 108, डीआरएसएफ 113, टीएएस 82 एवं एलएस 8
कर्नाटक	ज्वालामुखी, सनजीन 85, एमएसएफएच 8, एमएलएचएफएच 47, केबीएसएच 44, डीआरएसएच 1, एमएसएफएच 17, पीएसी 36, पीएसी 1091 एवं डीएसएच 1	मॉडर्न, टीएनएयूएसयूएफ 7, डीआरएसएफ 108 एवं डीआरएसएफ 113,
तमिलनाडु	एमएसएफएच 8, केबीएसएच 1, एमएसएफएच 17, ज्वालामुखी, सनजीन 85, पीएसी 36, पीएसी 1091, टीसीएसएच 1, एमएलएचएफएच 47, केबीएस 44 एवं एसएच 416	मॉडर्न, टीएनएयूएसयूएफ 7, को 1, को 2, डीआरएसएफ 108, डीआरएसएफ 113 एवं कोएसएफवी 5
आंध्र प्रदेश	एपीएसएच 11, एमएसएचएफ 8, केबीएसएच 1, एमएसएफएच 17, ज्वालामुखी, सनजीन 85,, पीएसी 36, पीएसी 1091, केबीएसएच 44, एसएच 416, डीआरएसएच 1 एवं एनडीएसएच 1	मॉडर्न, टीएनएयूएसयूएफ 7, डीआरएसएफ 108 एवं डीआरएसएफ 113
पंजाब	केबीएसएच 1, ज्वालामुखी, सनजीन 85, पीएसी 36, पीएसएफएच 67, पीएसएफएच 118, केबीएसएच 44 एवं डीआरएसएच 1	मॉडर्न, डीआरएसएफ 108 एवं डीआरएसएफ 113
हरियाणा	केबीएसएच 1, ज्वालामुखी, सनजीन 85, पीएसी 36, केबीएसएच 44, डीआरएसएच 1 एवं एचएसएफएच 848	मॉडर्न, डीआरएसएफ 108 एवं डीआरएसएफ 113
गुजरात	केबीएसएच 1, ज्वालामुखी, सनजीन 85, पीएसी 36, पीएसी 1091, एमएलएचएफएच 47, केबीएसएच 44, एसएच 41 एवं डीआरएसएच 1	जीएयूएसयूएफ 15, टीएनएयूएसयूएफ 7, मॉडर्न, डीआरएसएफ 108 एवं डीआरएसएफ 113
अन्य राज्य	केबीएसएच 1, ज्वालामुखी, सनजीन 85, पीएसी 36, पीएसी 1091, केबीएसएच 44 एवं डीआरएसएच 1	टीएनएयूएसयूएफ 7, मॉडर्न, डीआरएसएफ 108 एवं डीआरएसएफ 113

- रबी में अक्टूबर से नवम्बर तक।
- जायद में जनवरी के अंतिम सप्ताह से फरवरी के अंतिम सप्ताह तक।

बीज की मात्रा

सूर्यमुखी की बुआई के लिए संकुल किस्मों के लिए 10-12 व संकर किस्मों के लिए लगभग 6 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर का प्रयोग करें।

दूरी एवं गहराई

कतार से कतार की दूरी 60 सें.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 30 सें.मी. रखी जाये। कम अवधि वाली व संकर प्रजातियों के लिए कतार से कतार की दूरी 45 सें.मी. एवं पौधे से पौधे की दूरी 30 सें.मी. रखनी चाहिए। जमाव के पश्चात यदि पौधों की संख्या अधिक हो तो 10-12 दिनों बाद विरलीकरण अवश्य करें।

बीज शोधन

सूर्यमुखी का शीघ्र जमाव व सूखे की स्थिति से बचाव के लिए बुआई से पूर्व बीजों को 12-14 घंटे शुद्ध पानी में भिगोने के पश्चात छाया वाले स्थान पर सुखा देना चाहिए। बीजजनित बीमारियों से बचाव के लिए थीरम या कैप्टॉन/2-3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. तथा पाउडरी मिल्ड्यू से बचाव के लिए मेटालाक्सिल/6 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। दीमक व अन्य कीटों से बचाव के लिए बुआई से पूर्व इमिडाक्लोप्रिड/5-6 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करने के पश्चात बुआई करें।

परसेंचन (परपरागण) क्रिया

सूर्यमुखी एक परसेंचित फसल है। इसकी अच्छी पैदावार के लिए परसेंचन क्रिया का होना आवश्यक है। यह क्रिया भौरों एवं मधुमक्खियों के माध्यम से होती है। जहां इनकी कमी हो, वहां हाथ से परसेंचन की क्रिया करना लाभदायक होता है। अच्छी तरह फूल आने पर हाथ में दस्ताने पहनकर या किसी मुलायम रोयेंदार कपड़े को लेकर सूर्यमुखी के फूल के मुंडक पर चारों ओर धीरे-धीरे घुमा देना चाहिए। पहले फूल के किनारे वाले भाग पर फिर बीच के भाग पर यह क्रिया प्रात:काल 7:30 बजे तक की जा सकती है।

खरपतवार नियंत्रण

सूर्यमुखी की फसल को जमाव से 60 दिनों तक खरपतवारों से मुक्त रखना आवश्यक है। इसके लिए बुआई के 18-20 दिनों बाद 15 दिनों के अंतराल पर हाथ द्वारा निराई-गुड़ाई करें। फसल की लंबाई जब 60-70 सें.मी. हो जाये तो पौधों पर मिट्टी चढ़ाने का कार्य अवश्य करें। खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण के लिए पेंडीमेथालीन 01 कि.ग्रा. अथवा एलाक्लोर 01-1.5 कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर का 600 से 700 लीटर पानी में घोल बनाकर बुआई के 1 से 2 दिन बाद छिड़काव करें।

खाद एवं उर्वरक

शीघ्र बढ़ने व अधिक तेल उत्पादन वाली तिलहनी फसल होने के कारण अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है। इसके लिए बुआई से 2-3 सप्ताह पूर्व 8-10 टन गोबर की सड़ी हुई खाद अथवा कम्पोस्ट खाद का प्रयोग करें। इसके पश्चात 80-90 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर देना आवश्यक है। नाइट्रोजन की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय प्रयोग करें। शेष नाइट्रोजन की मात्रा को टॉप ड्रेसिंग के रूप में बुआई के 30 व 45 दिनों बाद समान भागों में प्रयोग करें।

रोग एवं कीट प्रबंधन

रोग प्रबंधन

- **रस्ट:** पानी लगने वाले खेतों में सूर्यमुखी की फसल को लगाने से बचें। कैप्टॉन अथवा थीरम 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. अथवा कार्बेन्डाजिम 1 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से बीजों को उपचारित करें। डाईथेन एम-45 अथवा डाईथेन जेड-78 प्रति 2.5 ग्राम प्रति लीटर पानी में घोल बनाकर 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव करें।
- **अल्टरनेरिया ब्लाइट:** रोगाणुमुक्त बीजों का प्रयोग करें। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से फसलचक्र अपनायें।
- **डाउनी मिल्ड्यू:** रोगरोधी संकर प्रजातियों की बुआई करें। बीजों को मेटालॉक्सिल 6 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करके बुआई करें।

कीट प्रबंधन

सूर्यमुखी की फसल में लगने वाले कीटों को सारणी-2 में दर्शाया गया है।

कटाई व मड़ाई

सूर्यमुखी के बीजों में नमी की मात्रा 20 प्रतिशत अथवा मुंडकों का पिछला भाग पीला भूरा रंग का हो जाये तब मुंडकों की कटाई करनी चाहिए। काटने के पश्चात मुंडकों को छाया में सुखा लें। इसके बाद डंडे अथवा थ्रेसर के द्वारा इसकी मंड़ाई की जा सकती है। बीजों का भंडारण करते समय नमी की मात्रा 10 प्रतिशत से कम रहनी आवश्यक है।

उपज

कृषि की उन्नत तकनीकियों को अपनाकर सूर्यमुखी की खेती की जाये तो असिंचित क्षेत्रों में इसकी पैदावार 12-15 क्विंटल तथा सिंचित क्षेत्रों में 20-25 क्विंटल प्रति हैक्टर प्राप्त होती है। ■

सारणी 2. सूर्यमुखी में लगने वाले कीट व उनका प्रबंधन

कीट का प्रकार	प्रबंधन
कट वर्म	सिंचाई के साथ क्लोरोपाइरीफॉस का 3.75 ली प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।
केपिटूलम बोरर	इस कीट के अंडों व लार्वा को एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए। साइपरमेथ्रीन (0.005 प्रतिशत) दवा का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
टोबेको केटरपिलर	इस कीट के अंडों व लार्वों को एकत्रित कर नष्ट कर देना चाहिए। अथवा
बिहार हेयर केटरपिलर हरा सेमीलूपर	डाईक्लोरवास (0.05 प्रतिशत) अथवा फेनीट्रोथियान (0.05 प्रतिशत) दवा का 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।
लीफ हॉपर	खेत व मेड़ की साफ-सफाई रखें। फास्फोमिडान (0.03 प्रतिशत) अथवा डाईमेथोएट (0.03 प्रतिशत) दवा को 500-600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। अथवा मेलाथियोन (5 प्रतिशत) अथवा क्यूनालफॉस (5 प्रतिशत) की दर से 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर दवा का प्रयोग करें।

मुर्गियों में खनिज एवं विटामिन की कमी से होने वाले रोग

के.पी. सिंह[1] और **प्रणीता सिंह**[2]
पशुधन उत्पाद प्रौद्योगिकी विभाग, पशु चिकित्सा एवं पशु विज्ञान महाविद्यालय,
गोबिन्द बल्लभ पंत कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, पंतनगर, ऊधम सिंह नगर-263145 (उत्तराखण्ड)

"मुर्गियों की वृद्धि, शारीरिक विकास और अंडा उत्पादन में पोषक आहार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। खनिज लवणों और विटामिनों का इनके शारीरिक स्वास्थ्य को कायम रखने में भी महत्वपूर्ण योगदान है। इनकी कमी से शारीरिक विकास कम हो जाता है तथा मुर्गियों की उत्पादन क्षमता पर बुरा असर पड़ता है। खनिज लवणों की कमी से इन्हें कई प्रकार के रोग भी हो जाते हैं। इन रोगों का कारण जानकर उचित उपचार किया जा सकता है।"

खनिज लवण मुर्गियों के स्वास्थ्य के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं। ये शरीर के साथ-साथ मुर्गियों की वृद्धि, विकास एवं उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनकी कमी से शारीरिक विकास तथा मुर्गियों की उत्पादन क्षमता कम हो जाती है। इसके साथ-साथ खनिज लवणों की कमी से विभिन्न प्रकार के रोग हो जाते हैं, जो कि निम्नलिखित हैं:

[1]पशु चिकित्साधिकारी, राजकीय पशु चिकित्सालय, देवरनियां, बरेली (उत्तर प्रदेश); [2]सहायक प्राध्यापक

मुर्गियों द्वारा अंडों को फोड़ना

मुर्गियों में पाया जाने वाला यह एक महत्वपूर्ण दोष होता है। इसमें मुर्गियां या तो अपने अंडों को अथवा दूसरी मुर्गियों के अंडों को तोड़ती रहती हैं। कैल्शियम की कमी होने पर मुर्गियां इस प्रकार के दोष से ग्रसित होती हैं।

उपचार

इससे प्रभावित मुर्गियों को कैल्शियम की आधी से एक टिकिया सुबह-शाम देनी चाहिए। प्रभावित मुर्गियों को ऑस्टोकैल्शियम सीरप की आधी से एक चाय चम्मच मात्रा को दिन में 2-3 बार देना चाहिए। मुर्गियों को दाने के साथ-साथ कैल्शियमयुक्त खनिज मिश्रण जैसे-कोन्सीमिन, चिलेटेड ऐग्रीमिन फोर्ट, डासमिन, वेस्टमिन गोल्ड इत्यादि में से किसी एक की 25-30 ग्राम मात्रा प्रति 10 कि.ग्रा. दाने में मिलाकर देते रहना चाहिए। प्रभावित मुर्गियों को दाने में सीतुहा, सीप इत्यादि के चूर्ण को देने से लाभ मिलता है। मुर्गियों की इस बुरी आदत को छुड़ाने के लिए प्लास्टिक या चीनी मिट्टी से बने अंडे

को मुर्गियों के सामने रखना चाहिए और चोंच मारने पर चोट लगने के कारण मुर्गियां इस आदत को धीरे-धीरे छोड़ देंगी।

कच्चे अंडों का निकलना

खनिज तत्व कैल्शियम की कमी से प्रभावित मुर्गियां पिलपिले एवं मुलायम अंडे देने लगती हैं। अंडों का छिलका पतला एवं लचीला हो जाता है और उनका कोई मूल्य नहीं मिलता है। इसके कारण मुर्गीपालक को आर्थिक हानि का सामना करना पड़ता है।

रोग का कारण

यह मुख्य रूप से अंडे देने वाले मुर्गियों में कैल्शियम की कमी के कारण होता है। इसकी कमी के कारण अंडों का ऊपरी भाग पतला होकर पिलपिला हो जाता है।

रोग की चिकित्सा

प्रभावित मुर्गियों को कैल्शियम की 1/2-1 टिकिया दिन में दो बार देनी चाहिए। ओस्टोकैल्शियम सीरप की 1/2-1 चाय चम्मच की मात्रा दिन में दो बार देनी चाहिए। मुर्गियों के दाने में कैल्शियमयुक्त खनिज मिश्रण जैसे कोन्सीमिन टोटाविट स्ट्रांग डोसमिन, वेस्टमीन गोल्ड इत्यादि की 25-30 ग्राम मात्रा प्रति 10 कि.ग्रा. दाने में मिलाकर देते रहना चाहिए। वेटकाल बी$_{12}$, कॉन्सीटोन की 20-100 मि.ली. मात्रा पीने के पानी के साथ प्रति 10 मुर्गियों को देनी चाहिए। मुर्गियों में काल-डी रूबरा की 0.5 मि.ली. मात्रा प्रति पक्षी को प्रतिदिन देना लाभदायक होता है।

मुर्गियों के द्वारा पंख का नोचना

यह मुर्गियों में होने वाली एक बुरी आदत है। इससे ग्रसित मुर्गियां कभी-कभी दूसरी मुर्गियों के पंखों को, घुटने को, गुदा को तथा अन्य दूसरे भागों को नोचने का काम करती हैं, जिसके कारण मुर्गियां घायल हो जाती हैं। इससे ग्रसित मुर्गियां साथ रहने वाली अन्य दूसरी मुर्गियों को इससे प्रभावित कर देती हैं।

कैल्शियम की कमी से कच्चे अंडों का निकलना

कारण

इसका प्रमुख कारण प्रबंधन में अव्यवस्था है। यह मुख्य रूप से मुर्गियों की अधिक संख्या होने और खाने एवं पानी पीने के लिए बर्तनों की उचित व्यवस्था न होने पर होती है। मुर्गियों को उचित राशन नहीं मिलने तथा पोषक तत्वों की कमी होने या प्रकाश की उचित व्यवस्था न होने पर मुर्गियों में यह बुरी आदत आ जाती है।

उपचार

सबसे पहले प्रभावित मुर्गियों को अलग रखना चाहिए तथा नमक खिलाना चाहिए। प्रभावित मुर्गियों को सोडियम क्लोराइड की आधी टिकिया सुबह-शाम देने से यह आदत छूट जाती है। मुर्गियों के राशन में नमक की मात्रा बढ़ा देनी चाहिए। प्रभावित मुर्गियों की चोंच को काटकर थोड़ा मोटा कर देना चाहिए।

मुर्गियों को इससे बचाए रखने के लिए उचित पोषण एवं प्रबंध आवश्यक है। मुर्गियों को काल-डी रूबरा की 10 मि.ली. मात्रा प्रति 100 चूजों को, 20 मि.ली. मात्रा ब्रॉयलरों को तथा 50 मि.ली. मात्रा प्रति 100 मुर्गियों में दिन में दो बार देने से लाभ मिलता है।

मुर्गियों में टेढ़ी टांगें या पेरोसिस का होना

यह मुर्गियों में विटामिन बी-$_{12}$ या मैंगनीज की कमी से होने वाली बीमारी होती है। यह रोग मुख्य रूप से तीन से चार महीने की उम्र की मुर्गियों में होता है। रोग से प्रभावित मुर्गियों की टांगें टेढ़ी हो जाती हैं, जिसके कारण वे लंगड़ाने लगती हैं। पैरों में सूजन आ जाती है तथा चलने में दर्द होता है।

उपचार

प्रभावित मुर्गियों को विटामिन-ए, कोन्सीमीन, टोटाविट स्ट्रांग या वेस्टमीन गोल्ड की 25 ग्राम मात्रा प्रति 18 कि.ग्रा. दाने के साथ मिलाकर देनी चाहिए।

मुर्गियों में विटामिन की कमी से होने वाले रोग

मुर्गियों में विटामिन्स की कमी के कारण होने वाले प्रमुख रोग निम्नलिखित हैं:

विटामिन 'ए' की कमी से होने वाले रोग

विटामिन 'ए' की कमी के कारण मुर्गियों को रतौंधी रोग हो जाता है। प्रभावित मुर्गियों को दिखायी नहीं पड़ता है। आंखों में माड़ा पड़ जाता है और आंखें सफेद हो जाती हैं। इस विटामिन की कमी के कारण मुर्गियां सर्दी तथा जुकाम से ग्रसित हो जाती हैं। आंख तथा नाक से पानी बहता रहता है तथा आंख एवं नाक में सूजन आने लगती है। विटामिन 'ए' की कमी से ग्रसित छोटी मुर्गियों को चक्कर आने लगते हैं तथा ये गिर पड़ती हैं। इससे ग्रसित मुर्गियों को भूख कम लगती है। प्रभावित मुर्गियों का शारीरिक विकास रुक जाता है।

विटामिन 'डी' की कमी से होने वाले रोग

विटामिन 'डी' की कमी होने पर मुर्गियों का विकास रुक जाता है। चूजों की वृद्धि दर में गिरावट आ जाती है। प्रभावित मुर्गियों के अंडों के छिलके पतले होने लगते हैं। अंडों के उत्पादन में भारी गिरावट आ जाती है। मुर्गियों की हड्डियां टेढ़ी हो जाती हैं तथा छोटी रह जाती हैं। इसकी कमी से प्रभावित मुर्गियों के पंख बहुत देर से निकलते हैं। विटामिन-डी मुर्गियों के शरीर के विकास में सहायक है।

उपचार

सामान्य रूप में विटामिन 'डी' धूप से मिलता है। अत: धूप का उचित प्रबंध करना चाहिए। इसकी कमी से ग्रसित मुर्गियों को टी.एम. फोर्ट, विटामिक्स, कान्सीटोन, कान्सीमिन वीटासेप्ट इत्यादि दवाइयां देने से लाभ मिलता है।

विटामिन 'के' की कमी से होने वाले रोग

इसकी कमी से ग्रसित मुर्गियों में कट लगने पर खून का थक्का बनाने की शक्ति क्षीण हो जाती है, जिसके कारण खून बहता रहता है।

उपचार

प्रभावित मुर्गियों को पोलकॉन की एक ग्राम मात्रा 10 कि.ग्रा. दाने में मिलाकर देते रहना चाहिए। इसकी कमी से ग्रसित मुर्गियों को कैपिलिन ओरल की एक टिकिया प्रतिदिन खिलाने से लाभ मिलता है। खून बहते रहने की अवस्था में क्रोमोस्टेट, स्टाइपलन या रेवीसी इत्यादि में से किसी एक की एक मि.ली. मात्रा की मांस में सूई लगानी चाहिए।

विटामिन 'ए' की कमी से ग्रसित अंडे देने वाली मुर्गियों के अंडा उत्पादन में गिरावट आ जाती है। मुर्गियों के गुर्दा एवं मूत्र नलिकाओं में यूरिक एसिड जमा हो जाता है। विटामिन 'ए' की अधिक कमी होने पर मुर्गियों की मृत्यु हो जाती है।

उपचार

- इसकी कमी से प्रभावित मुर्गियों के दाने में बिटाब्लेण्ड ए-डी-3 मिलाकर देना चाहिए अथवा बिटाब्लेण्ड लिक्विड पानी में मिलाकर देना चाहिए।
- विटामिन 'ए' की अत्याधिक कमी से प्रभावित मुर्गियों को प्रोपलीन फोर्ट, एरोविट या विटामिन 'ए' की सूई की 1/2 से 1 लाख यूनिट मांस में सप्ताह में दो बार लगानी चाहिए।
- इसकी कमी से प्रभावित मुर्गियों को हरी साग-सब्जियां अधिक मात्रा में देनी चाहिए। साथ ही साथ मछली के तेल की 2-4 बूंद सुबह-शाम पिलाते रहना चाहिए।
- प्रभावित मुर्गियों को कन्सीविट या कान्सीटोन की 10 मि.ली. मात्रा प्रति 1000 मुर्गियों को पानी के साथ सुबह-शाम 7 दिनों तक पिलानी चाहिए।
- विटामिक्स-एस की 25 ग्राम मात्रा को प्रति 10 कि.ग्रा. दाने में मिलाकर देते रहना चाहिए।
- विटामिन 'ए' की कमी से ग्रसित मुर्गियों को विटामिन 'ए' की 10 मि.ली. मात्रा, अंडे देने वाली मुर्गियों को 10 मि.ली. मात्रा, ग्रोवर को तथा 2 मि.ली. मात्रा, चूजों को पीने के पानी के साथ 10 दिनों तक देनी चाहिए।

विटामिन बी$_2$ या राइबोफ्लेविन की कमी से होने वाले रोग

रोग के लक्षण

विटामिन बी$_2$ की कमी से ग्रसित मुर्गियों के पंख झड़ने लगते हैं। भूख कम हो जाती है, मुर्गियां अत्यधिक कमजोर हो जाती हैं। प्रभावित मुर्गियों की त्वचा खुरदरी हो जाती है तथा पैरों के जोड़ों में सूजन आ जाती है। राइबोफ्लेविन की कमी से प्रभावित मुर्गियों के पंजे टेढ़े हो जाते हैं, जिसे 'कर्ल्ड टो' के नाम से जाना जाता है। पैरों में लकवा हो जाता है, जिसके कारण पैर टेढ़े हो जाते हैं तथा पैरालिसिस से ग्रसित हो जाते हैं। इसकी कमी से प्रभावित चूजों की वृद्धि रुक जाती है। विटामिन बी$_2$ की कमी लगातार बने रहने से मुर्गियां चलने-फिरने में असमर्थ हो जाती हैं। एक जगह पड़ी रहती हैं तथा अंत में भूख एवं पानी की कमी के कारण मुर्गियों की मृत्यु हो जाती है।

कैल्शियम की कमी के कारण अंडों का छिलका पतला एवं लचीला होना

रोग का उपचार

विटामिन बी$_2$ की कमी से प्रभावित मुर्गियों को विटामिन बी-कॉम्प्लेक्स की 1/2 से 1 चम्मच मात्रा प्रत्येक मुर्गी को देनी चाहिए। इसकी कमी से ग्रसित मुर्गियों को विसोल-बी की 15-20 मि.ली. मात्रा प्रति 100 मुर्गियों को पानी के साथ देनी चाहिए। साथ ही साथ कान्सीमिन की 25 ग्राम मात्रा को 10 कि.ग्रा. दाने के साथ देते रहना चाहिए। ■

विटामिन 'ई' की कमी से होने वाले रोग या क्रेजी चिक रोग

यह मुख्य रूप से 2-3 माह के चूजों को अधिक प्रभावित करता है। विटामिन 'ई' की कमी के कारण चूजों में उन्माद हो जाता है, जिसे उन्मादी चूजे (क्रेजी चिक) कहते हैं। इसकी कमी से ग्रसित चूजे इधर-उधर भागने-दौड़ने लगते हैं तथा लड़खड़ा कर चलते रहते हैं, अंत में गिर पड़ते हैं, आंख बन्द कर बैठे रहते हैं और 24 घंटे के अंदर इनकी मृत्यु हो जाती है।

उपचार

इसकी कमी से ग्रसित मुर्गियों को विटासेप्ट की 0.25 से 0.5 मि.ली. मात्रा की सूई मांस में सप्ताह में एक बार देनी चाहिए। प्रभावित चूजों को पोलकॉन की एक ग्राम मात्रा 10 कि.ग्रा. दाने में मिलाकर खिलाने से लाभ मिलता है। प्रभावित मुर्गियों को कोन्सीटोन लिक्विड पिलाने से भी लाभ मिलता है।

लेखकों से आग्रह

हमारे लेखक बंधु *खेती* पत्रिका के लिए अपने लेख और संबंधित फोटो, कवरिंग लैटर के साथ अब ई-मेल से भी भेज सकते हैं। भेजते समय ध्यान रखें कि फोटो के ऊपर कैप्शन न लिखा जाए बल्कि इसके नीचे दिया जाये। ई-मेल से आने वाले लेखों को प्रकाशन प्रक्रिया में शीघ्र शामिल किया जा सकेगा। लेख में अधिकतम 1500 शब्दों की संख्या रखने का प्रयास करें। पाठक अपने सुझाव और प्रतिक्रियाएं ई-मेल के माध्यम से भेज सकते हैं। ई-मेल भेजने के लिए कृपया कृति देव 010 टाइप फेस का प्रयोग करें।

हमारा ई-मेल है :

E-mail : phalphul@gmail.com

–संपादक

मार्कर तकनीक से गन्ना फसल सुधार

राघवेन्द्र कुमार[1], संगीता श्रीवास्तव[1] और दिनेश कुमार[2]

"मिठास के लिए सबसे उपयुक्त गन्ना की फसल होती है। इसके उत्पादन में बदलाव, किसान तथा शर्करा उद्योग को आर्थिक रूप से प्रभावित करता है। नकदी फसल होने के कारण इसके घटते उत्पादन को बढ़ाने के लिए लगातार प्रयास किए जा रहे हैं। उत्पादकता वृद्धि में सबसे महत्वपूर्ण है, उन्नतशील रोगमुक्त गन्ने की प्रजातियों का विकास। कृषि वैज्ञानिकों के लिए यह एक चुनौती भरा कार्य है।"

खेतों में उगाए जाने वाले सामान्य गन्ने की मूल रूप से पांच प्रकार की प्रजातियां होती हैं–सैकरम ऑफिसिनेरम, से. बारबेरी, से. साइनेन्स तथा दो जंगली देशी प्रजातियां से. स्पॉन्टेनियम तथा से. रोबस्टम है। इस पौधे की विभिन्न प्रजातियां विश्वभर में लोकप्रिय हैं। से. ऑफिसिरेनम का योगदान प्रजनन शोध कार्य में सबसे अधिक है।

वस्तुत: गन्ना हेट्रोजॉयगस प्रकृति की घास की एक किस्म है और कोशिकानुवंशिकी दृष्टिकोण से अलग-अलग गुणों के कारण अधिक महत्वपूर्ण है। इनमें सामान्यत: 70 से 130 संख्या में गुणसूत्र पाए जाते हैं।

गन्ने को ज्वार तथा अन्य मिलते-जुलते पौधों से प्रजनन कराने में प्रजनक वैज्ञानिकों को अभूतपूर्व सफलता मिली है। किंतु, प्रजनन (क्रॉसिंग) से लेकर व्यावसायिक प्रजाति के विमोचन करने के बीच लंबी अवधि बीत जाने तथा प्रक्षेत्र प्रयोगों में कई बार निरीक्षण तथा आंकड़ों में आई त्रुटियों के कारण वांछित कांट-छांट से विकसित प्रजातियों के चयन में अशुद्धता आ जाती है। ऐसी स्थिति के समाधान हेतु 19वीं शताब्दी के अंत में गन्ने के जैव आणविक स्वरूप, जीनोमिक्स तथा जैव प्रौद्योगिकी के सामंजस्य से आनुवंशिक मार्कर का उपयोग किया जा रहा है। मार्कर से गुणसूत्र में विद्यमान विभिन्न प्रकार के गुणों तथा लक्षणों (ट्रेट) को प्रभावित करने वाले जीन की पहचान आसानी से की जाती है। जीन के आनुवंशिक अणु जैसे डीएनए (डी ऑक्सीरिबोन्यूक्लिक एसिड), आरएनए (रिबोन्यूक्लिक एसिड) तथा प्रोटीन के कोड ढूंढ लिए जाते हैं। बाद में सही जैविक सूचना को कम्प्यूटर द्वारा व्यवस्थित कर नई-नई प्रजातियों के विकास के उपयोग में लाया जाता है। इसे मार्कर सहायक चयन (मार्कर एसीस्टेड सेलेक्शन/एमएसएस) के नाम से जाना जाता है।

वस्तुत: आणविक मार्कर, जैविक अणु, डीएनए के खास समूह (फ्रेगमेन्ट्स) होते हैं,

[1]भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ (उत्तर प्रदेश); [2]कृषि जैव सूचना केन्द्र, भाकृअनुप-भारतीय कृषि सांख्यिकीय अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

आणविक मार्कर किट

भारत में गन्ने के कैन्सर रोग, रेड रॉट आदि की पहचान के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। भाकृअनुप-भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ के फसल सुधार विभाग में इस बीमारी के कारक के जीन अनुक्रम (डाटाबेस) उजागर करने वाले 'आणविक मार्कर पहचान (डायग्नोस्टिक) किट' का विकास किया गया है। यह नेशनल सेन्टर फॉर बायोटेक्नोलॉजी इन्फार्मेशन (एनसीबीआई) की वेबसाइट पर शोध कार्य हेतु उपलब्ध है।

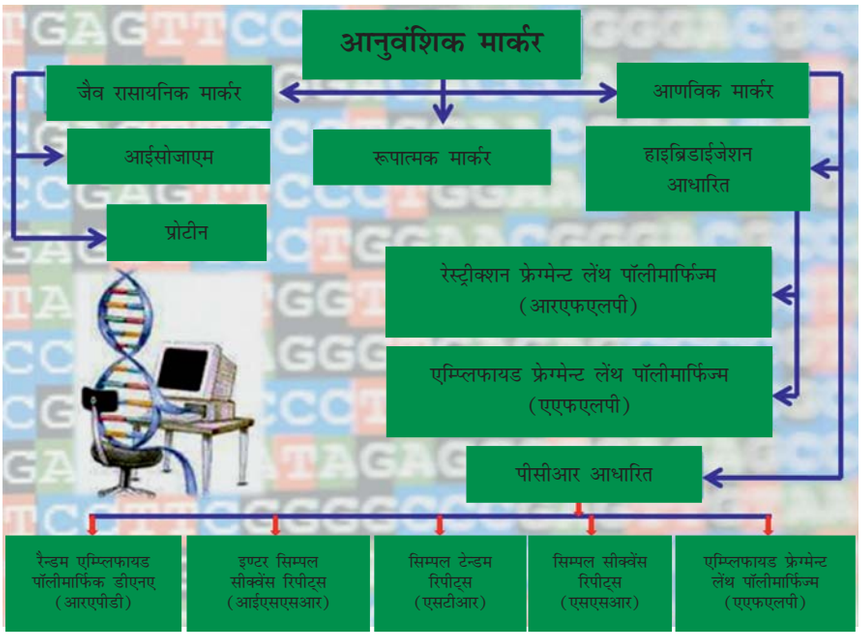

गन्ने में मार्कर का योगदान

जो किसी खास जीनोम की विशिष्ट जगह पर अज्ञात डीएनए के अनुक्रम (सीक्वेन्स) को उजागर करने में सहायता प्रदान करते हैं। इनका समस्याग्रस्त जीन को चिन्हित करने में बहुमूल्य योगदान है। प्राय: मार्कर प्रमुख तथा सह-प्रमुख प्रकृति के होते हैं, जिन्हें उपयोगिता के आधार पर तीन प्रमुख वर्गों में बांटा जाता है। इनमें प्रथम, द्वितीय तथा नई पीढ़ी के आणविक मार्कर होते हैं। इनकी सहायता से कई प्रकार के आनुवंशिक गुण (एलिल) तथा लक्षण (ट्रेट) को आनुवंशिक प्रतिचित्रण (मैपिंग) के माध्यम से दर्शाया जाता है। किसी भी जीनोम में आनुवंशिक मार्कर के खास विश्लेषण में दो स्थितियों में मैपिंग की जाती है।

पहली दशा में गुणसूत्रों के खास समूह के भौतिक रूप को दर्शाना तथा दूसरी स्थिति में उनके गुणसूत्र की आनुवंशिक कड़ी/शृंखला (लिंकेज) को सप्रमाण प्रस्तुत करना। इस प्रकार मार्कर के लिंकेज को जीन के पॉलिमॉर्फिक स्वरूप में दर्शाया जाता है, जो वस्तुत: न्यूक्लियोटाइड (एक विशेष प्रकार के जैविक केन्द्रीय अम्ल) के अनुक्रम को परिभाषित करता है। पॉलिमॉर्फिक पहचान के जरिए वैज्ञानिक किसी खास जाति, प्रजाति अथवा इसके जीवद्रव्य के डीएनए की बनावट तथा उनके बीच की परिवर्तनशीलता (वेरिएबिलिटी) को खास मैपिंग की मदद से दर्शाया जाता है। हालांकि ऐसे मार्कर को प्रमुख भूमिका, नए तथा विशिष्ट (नॉवेल) लक्षणों को पहचानने के उद्देश्य से सुरक्षित रखा जाता है। एक या एक से अधिक गुण तथा लक्षण को पहचानने वाले मार्कर को मार्कर सहायक चयन में इस्तेमाल किया जाता है। इससे प्रजनक संततियों को आनुवंशिक गुणों के आधार पर चयनित करने में सुगमता प्राप्त होती है।

आणविक मार्कर की सहायता से फायलोजेनेटिक संबंधों को सफलतापूर्वक निरूपित किया जाता है। इनमें डीएनए फिंगरप्रिंटिंग तथा विविधता विश्लेषण अत्यंत प्रमुख हैं, जिसमें खास पावन वर्ग, जाति तथा समुदाय को वर्गीकरण, तुलनात्मक मैपिंग, क्वांटिटेटिव ट्रेट लोसाई (क्यूटील) इत्यादि प्रयोजन प्रमुख होते हैं। मार्कर से चिन्हित डीएनए तथा प्रोटीन (एंजाइम) को जेल इलेक्ट्रोफोरेसिस के उपरांत लाभकारी जैविक अणु को बैण्ड के रूप में चिन्हित करके उनके कोडोन की जैविक सूचना जमा कर ली जाती है। इस कार्य में पॉलीमेरेज चेन रिएक्शन (पीसीआर) की सहायता से अध्ययन किया जाता है।

विविधता विश्लेषण

किसी पादप समष्टि (पॉपुलेशन) में आणविक मार्कर को प्रजातियों के विकास के आधार पर दो प्रमुख भागों में वर्गीकृत किया जाता है-जीन लक्षित मार्कर (जीन टारगेटेड मार्कर या जीटीएम) तथा कार्यात्मक मार्कर (फंक्शनल मार्कर या एफएम)।

जीन लक्षित मार्कर से जीन के अंदर पॉलीमार्फिज्म वाले रूपांतरित स्थान को सुगमतापूर्वक प्रदर्शित किया जाता है। इससे बाहरी खास स्वरूप (ट्रेट) से संबंधित मार्कर की लाईब्रेरी बनाने में सफलता मिलती है। उदाहरणस्वरूप गन्ने की विभिन्न प्रजातियों तथा जीवद्रव्य पौधों में शर्करा बनाने वाले जीन, जो गुणसूत्र के खास लोकाई (स्थान) पर केन्द्रित होते हैं, को पहचान करने वाले मार्कर का विकास किया जा सकता है। ऐसे मार्कर को प्राइमर डिजाइन के संयोग से जैव अनुक्रम सूचना (खास प्रकार न्यूक्लियोटाइड कोडोन) सुरक्षित रखा जाता है। बाद में इन्हें प्रजनन कार्य में उपयोग लाया जाता है। दूसरी ओर कार्यात्मक मार्कर से कार्य संबंधित स्वरूप (ट्रेट) जैसे रोग प्रतिरोधकता, सहनशीलता इत्यादि कार्यों में मदद मिलती है।

जीन टैगिंग तथा मैपिंग

आणविक स्तर पर गन्ने के अनेक उपयोगी जीन जैसे बीमारी से प्रतिरोधक, शर्करा निर्माण में सहायक तथा अन्य अजैविक प्रतिकूल परिस्थितियों से मुकाबला करने वाले

आणविक मार्कर की उपयोगिता

आज के दौर में गन्ना फसल को सबसे अधिक नुकसान, शर्करा की प्रतिशत मात्रा में ह्रास, लाल सड़न रोग, बेधक, नाशीकीट, सूखा तथा जल भराव इत्यादि से होता है। ऐसी दशा में गन्ने की नई-नई विमोचित प्रजातियां प्राय: अपना अस्तित्व पांच से दस वर्षों में खो देती हैं। इस प्रतिकूल दशा के समाधान तथा यथायोग्य उन्नयन के लिए प्रजातियों के प्रजनन में आणविक मार्कर का उपयोग किया जाता है। विश्व के प्रगतिशील राष्ट्र जैसे अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया में गन्ने की प्रजातियों के सुधारक जीनों के लाभकारी मार्कर इन दिनों काफी लोकप्रिय हो रहे हैं।

सहायक जीन इत्यादि गुणसूत्र के खास स्थान (लोसाई) पर केन्द्रित रहते हैं। ऐसे जीन को विशेष प्रकार के आणविक तथा जैव रासायनिक मार्कर की मदद से जीन टैगिंग किया जाता है। इस कार्य में आरएएफपीए आरएपीडीए एएफएलपी, एसएसआर, सिम्पल न्यूक्लियोटाइड पॉलीमार्फिज्म (एसएनपी) का भी उपयोग किया जाता है। इस क्रम में प्रसिद्ध जैव आणविक वैज्ञानिक गेल्डरमैन ने पहली बार क्वांटीटेटिव ट्रेट लॉसी (क्यूटीएल) के माध्यम से अनेक ट्रेट यानी गुणों वाले जीनोम क्षेत्र के बारे में बताया था।

क्वांटिटेटिव ट्रेट लोसाई के महत्व

जीनोमिक्स के गहन प्रयोग से प्राप्त परिणाम के आधार पर ऐसा देखा गया है कि पादप प्रकृति में ढेर सारे उपयोगी गुण तथा लक्षणों से लैस ट्रेट पड़े होते हैं। इस प्रकार क्यूटीएल से ट्रेट की पहचान निम्नलिखित चरण में होती है:

- सम्यक पैतृक से सम्यक मैपिंग पॉपुलेशन विकसित होती है।
- विशेष एवं प्रभावी आणविक मार्कर से किसी विशेष लिंकेज मैप को संतृप्त किया जाता है।
- किसी सार्थक मैपिंग पॉपुलेशन से विश्वसनीय फीनोटॉइपिंग किया जाता है।
- इसको स्टैटिस्टिकल पैकेज एनालिसिस की सहायता से क्यूटीएल की पहचान में उपयोग किया जाता है।

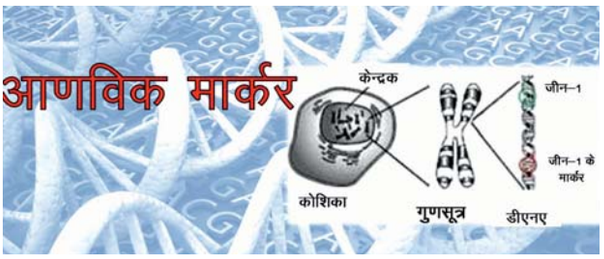

सामान्यत: किसी जीन का डीएनए अनुक्रम अज्ञात होता है, जबकि उससे जुड़े मार्कर का डीएनए अनुक्रम ज्ञात होता है

महत्वपूर्ण उपलब्धियां

- बार्नस, शदरफोर्ड एवं बोथा ने सन् 1997 में गन्ने की समुन्नत प्रजातियों के विकास के लिए विशेषकर रोग तथा नाशीकीट के लिए विशिष्ट ट्रेट लिंक्ड मार्कर के उपयोग की चर्चा की। उन्होंने एल्डाना, मोसाएक और स्मट के लिए 54 पॉलीमॉर्फिक आरएपीडी मार्कर की पहचान संबंधित विस्तृत जानकारी को प्रतिपादित किया था।
- अमेरिका तथा ब्राजील के दो प्रसिद्ध जैव आणविक वैज्ञानिक, डी. सिल्वा और ब्रेसियानी ने सन् 2005 में गन्ने के संभ्रांत जीवद्रव्यों में शर्करा जीन के क्यूटीएल टैगिंग के लिए ईएसटी द्वारा आर.एफ.एल. मार्कर का उपयोग किया।
- सन् 1996 में डाएग्रोइस और उनके साथियों ने ब्राजील की गन्ना प्रजाति आर 570 में एएफएलपी/बीएसए (बल्क सेंग्रीगेन्ट एनालिसिस तकनीक द्वारा रस्ट (पकसिनिया मेलानोसिफेला) बीमारी से संबंधित जीन ब्रू–1 का पता लगाया।
- अंतर्जातीय संकरित गन्ना पौधों में प्रजनकों द्वारा प्रदत्त उत्तरदायी गुणसूत्रों की पहचान के लिए स्वउद्दीपित अविस्थापित संकरण (फ्लोरेसेन्ट इनसिटु हाइब्रिडाइजेशन) को कारगर कोशिकीय आणविक मार्कर के रूप में किया जाता है।
- आजकल शोध द्वारा माइक्रो आरएनए चिन्हित किए जा रहे हैं। इसका जैविक तथा अजैविक त्रास की प्रतिरोधी क्षमता विकसित करने वाले जीन के एक्सप्रेशन में मुख्य योगदान होता है। गन्ने में लगभग 50 से अधिक माइक्रो आरएनए सूखा, 11 माइक्रो आरएनए लवणीयता, लगभग 240 माइक्रो आरएनए रोग तथा अन्य कई संबंधित परिवार के फसलों में शुगर ट्रेट के लिए पहचाने गए हैं। इस दिशा में अनेक उत्कृष्ट शोध कार्य सम्पन्न हुए हैं, लेकिन वस्तुत: गन्ना के पॉलीप्लाइड हेटराजायग्स फसल होने के कारणवश चुनौती भी अधिक देखी जाती है। नवीन सीक्वेंसिंग तकनीकी, कम्प्यूटेशनल सुविधा तथा कम्पेरेटिव जीनोमिक्स के द्वारा इन समस्याओं को प्रभावी ढंग से समाधान किया जाता है।
- ट्रांसजेनिक तकनीकी की मदद से इन दिनों दूसरे किसी जीव के व्यावसायिक रूप (जैसे सूखा जल प्लाविता आदि सहनशील तथा रोग प्रतिरोधी इत्यादि) से लाभकारी जीनों को आणविक मार्कर के लिए उपयोग में लाया जाता है।■

भविष्य की संभावनाएं

विश्व में कृषि क्षेत्र में प्रजातियों के उन्नयन में लगातार प्रयास किए जा रहे हैं। इस संदर्भ में 19वीं शताब्दी के अंत में डीएनए मार्कर के इस्तेमाल तथा प्रतिचित्रण से संबंधित बड़ा शोध प्रोजेक्ट सबसे पहले अमेरिका, ब्राजील तथा ऑस्ट्रेलिया में शुरू किया गया था। इन दिनों गन्ने की प्रजातियों के विकास तथा अनुसंधान संबंधित खर्चों में कटौती की दिशा में नवीन तकनीकों को बड़े स्तर पर अपनाया जा रहा है। जीनोमिक्स के अंतर्गत विभिन्न प्रकार के आणविक तथा जैव रासायनिक मार्कर संबंधित ज्ञान को विश्व स्तर पर लोकप्रिय बनाने के उद्देश्य से भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के दो प्रमुख संस्थान भाकृअनुप–गन्ना प्रजनन संस्थान कोयम्बटूर तथा भाकृअनुप–गन्ना अनुसंस्थान संस्थान में लगातार सराहनीय कार्य राष्ट्रहित में निष्पादित किए जा रहे हैं।

गन्ना प्रजनन के अलावा ऐसे मार्कर से अनेक आनुवंशिक समस्याओं के समाधान में सफलता मिलती है। फिंगरप्रिंटिंग से गन्ने की विविध प्रजातियों की पहचान संबंधित सभी वैज्ञानिक सूचनाओं (जैविक डाटाबेस) को आसानी से सुरक्षित रखा जाता है। ऐसे शोध कार्य की बदौलत पौधों को प्रक्षेत्र में उगाए जाने वाले खर्चों से बचा जा सकता है और वांछित प्रजातियों के नव सृजन में सफलता मिलती है। हालांकि महंगे प्रयोगशाला संबंधित रखरखाव जैसे डिजिटल उपकरण, रसायन, कम्प्यूटर इत्यादि के अलावा प्रशिक्षित कौशलपूर्ण मानव संसाधन अनेक कारण से इसकी लोकप्रियता के लिए जिम्मेदार है।

जीनोटाइपिंग तथा डाटा माइनिंग में मार्कर बहुत ही कारगर साबित हो सकता है। एसएसआर तथा एसएनपी डाटामाइनिंग की जबरदस्त लोकप्रियता को देखते हुए इन दिनों कृषि वैज्ञानिक फसलों के विविध स्वरूप जैसे अतिसूक्ष्म (नैनो) प्रौद्योगिकीय इत्यादि शोध कार्य में मार्कर ज्ञान को सबसे विश्वसनीय माना गया है। वह दिन दूर नहीं जब गन्ने को जानने तथा पहचानने के लिए विश्व को मार्कर का एक डिजिटल 'आधार' जारी करने की जरूरत पड़ जाए।

फसल अवशेषों को जलाने से वातावरण पर दुष्प्रभाव

सत्यम चौरिहा, हरेश्याम मिश्र और **धीरेन्द्र कुमार**
कृषि विज्ञान केन्द्र, गनीवां, चित्रकूट (उत्तर प्रदेश)

" फसल कटाई के पश्चात् इसका एक बहुत बड़ा हिस्सा अवशेष के रूप में अनुपयोगी रह जाता है, जो नवकरणीय ऊर्जा का स्रोत होता है। भारत में इस तरह के फसल अवशेषों की मात्रा लगभग 62 करोड़ टन है। इसका आधा हिस्सा घरों एवं झोपड़ियों की छत निर्माण, पशु, आहार, ईंधन एवं पैकिंग हेतु उपयोग में लाया जाता है एवं शेष आधा भाग खेतों में ही जला दिया जाता है। अनुमानित तौर पर फसल अवशेष जैसे सूखी लकड़ी, पत्तियां, घास-फूस जलाने सें वातावरण में 40 प्रतिशत Co2, 32 प्रतिशत Co, कणिकीय पदार्थ 2.5 तथा 50 प्रतिशत हाइड्रोकार्बन पैदा होता है। "

खेतों में फसल अवशेष जलाकर नष्ट करने की प्रक्रिया से वातावरण दूषित होता है। जमीन का कटाव बढ़ता है एवं सांस की बीमारियां बढ़ती हैं। फसल अवशेषों को जमीन में सीधे ही समावेश करने की प्रक्रिया सरल है, परंतु इसमें कुछ कठिनाइयां भी हैं। जैसे दो फसलों के बीच का अंतर कम होना। इसमें अतिरिक्त कम सिंचाई एवं अन्य क्रियाएं भी सम्मिलित होती हैं, जिससे लागत बढ़ जाती है।

अध्ययन के अनुसार धान का भूसा मृदा में मिलाने से मीथेन गैस का उत्सर्जन होता है, जो भूमंडलीय ऊष्णता को बढ़ा देता है। इन कठिनाइयों को सरल प्रक्रिया द्वारा दूर कर फसल अवशेषों को जलाने से होने वाले दुष्परिणामों को कम किया जा सकता है। अत: फसल अवशेषों का नवीनीकरण स्वस्थ वातावरण हेतु एवं आर्थिक दृष्टि से अति आवश्यक है।

जलती पराली, बढ़ता प्रदूषण

स्वच्छ वातावरण हेतु चिंताजनक

- यह वायु प्रदूषण वातावरण की निचली सतह पर एकत्रित होता है, जिसका सीधा प्रभाव आबादी पर होता है।
- इस प्रकार का प्रदूषण दूरगामी इलाकों एवं विस्तृत क्षेत्रों में हवा द्वारा फैलता है, जिसका नियंत्रण हमारे वश में नहीं है।
- इस प्रकार का प्रदूषण ग्रीनहाऊस गैस उत्पादन कर वैश्विक मौसम परिवर्तन का कारण बनता है।
- फसल अवशेष जलाने से वातावरण में खतरनाक रसायन घुल जाता है, जो एक कैंसरकारी प्रदूषक है।

रसायन डायआवसिन

फसल अवशेषों में कीटनाशकों के अवशेष होने के कारण इसको जलाने से विषैला रसायन डायआवसिन हवा में घुल जाता है। फसल की कटाई के समय एवं कटाई के पश्चात् अवशेषों को जलाने से हवा में विषैले डायआवसिन की मात्रा 33-270 गुना बढ़ जाती है। डायआवसिन का प्रभाव वातावरण में दीर्घ समय तक रहता है, जो मनुष्य एवं पशुओं की त्वचा पर जमा हो जाता है, और उससे खतरनाक बीमारियां होती हैं।

विकल्प एवं निदान

- सरकार फसल अवशेष न जलाने हेतु नियम लागू करें ताकि प्रदूषण कम हो सके।
- फसल अवशेषों को खेत में पुन: जोतकर मृदा स्वास्थ्य को बढ़ाया जा सकता है।
- अवशेषों को एकत्रित कर ईंधन, कम्पोस्ट, पशु आहार, घर की छत और मशरूम उत्पादन आदि कार्यों में उपयोग किया जा सकता है।
- इन अवशेषों से जैविक ईंधन भी तैयार कर सकते हैं।

फसल अवशेषों को जलाने से स्वास्थ्य संबंधी समस्याएं

- थायराइड हार्मोन स्तर में परिवर्तन होता है।
- गर्भ अवस्था के दौरान बच्चे के दिमागी स्तर पर दुष्प्रभाव पड़ता है।
- इस प्रदूषण से पुरुषों में टेस्टोस्टेरॉन हार्मोन का स्तर घटता है।
- स्त्रियों में प्रजनन संबंधी रोग बढ़ जाते हैं।
- रोग प्रतिरोधक क्षमता घट जाती है।

- इन अवशेषों को सूक्ष्म जीवाणुओं के द्वारा सड़ाने का एक सरल उपाय है, जिससे उपजाऊ कम्पोस्ट तैयार कर मृदा की भौतिक संरचना एवं उर्वरता दोनों को बढ़ाया जा सकता है।

IFFCO

पूर्णतः सहकारी स्वामित्व
Wholly owned by Cooperatives

50 1967 2017
स्वर्ण जयंती
Golden Jubilee

इफको के स्वर्णिम 50 वर्ष

कृषि, सहकारिता एवं ग्रामीण विकास को समर्पित

नीम लेपित यूरिया | एन पी के | डी ए पी | एन पी | बॉयो फर्टिलाइजर

वॉटर सोल्यूबल फर्टिलाइजर | माईक्रो न्यूट्रीएन्ट फर्टिलाइजर

Follow us :

YouTube IFFCO live
iffcolive.com

IFFCO
पूर्णतः सहकारी स्वामित्व

INDIAN FARMERS FERTILISER COOPERATIVE LIMITED

IFFCO Sadan, C-1 District Centre, Saket Place, New Delhi - 110017, INDIA
Phones : 91-11-26510001, 91-11-42592626. Website : www.iffco.coop

"ब्राजील से शुरू होकर गेहूं का ब्लास्ट रोग लगभग पूरे विश्व में फैल चुका है। इसमें गेहूं की बालियां दाने पड़ने से पहले ही सूख जाती हैं और उपज में 40-100 प्रतिशत तक कमी आ जाती है। यह रोग बीज, फसल अवशेष तथा हवा द्वारा फैलता है। भारत में इसकी रोकथाम के उपाय खोजे जा रहे हैं।"

गेहूं के ब्लास्ट रोग की रोकथाम

देवेन्द्र पाल सिंह, सुधीर कुमार, प्रेम लाल कश्यप और **ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह**
भाकृअनुप-भारतीय गेहूं एवं जौ अनुसंधान संस्थान, करनाल-132001 (हरियाणा)

गेहूं में ब्लास्ट व्याधि एक कवक, मेग्नापोर्थे ओरायेजी पैथोटाइप ट्रिटीकम से पैदा होती है। यह व्याधि सर्वप्रथम 1985 में ब्राजील में पायी गयी थी। बाद में यह बोलीविया, अर्जेंटीना, पैराग्वे, उरुग्वे तथा यूएसए में मिली। वर्ष 2016 में यह हमारे पड़ोसी देश, बांग्लादेश में पाई गई थी। यह व्याधि भारत के उत्तर-पूर्वी मैदानी जलवायु क्षेत्र में फैलकर गेहूं की फसल को हानि पहुंचा सकती है। इसमें गेहूं की बालियां दाने पड़ने से पहले ही सूख जाती हैं तथा उपज में 40-100 प्रतिशत तक गिरावट आ जाती है। यह रोग बीज, फसल अवशेष तथा हवा द्वारा फैलता है इसलिए इसकी रोकथाम के लिए भारत में काफी विचार-विमर्श चल रहा है।

वर्ष 2015-16 एवं 2016-17 में गेहूं की फसल का ब्लास्ट रोग के लिए सघन निरीक्षण विशेषज्ञों की टीमों के द्वारा पश्चिम बंगाल में भारत-बांग्लादेश सीमा के नजदीक किया गया। कहीं से भी ब्लास्ट रोग मिलने के संकेत नहीं मिले। हालांकि वर्ष 2016-17 में पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद एवं नादिया जिलों में गेहूं ब्लास्ट जैसी व्याधि के लक्षण दिखाई दिए।

गेहूं ब्लास्ट को रोकने के लिए रणनीतियां

- बांग्लादेश से गेहूं के बीज तथा दानों के आयात पर पूर्ण प्रतिबंध।
- बीज को अनुमोदित कवकनाशियों जैसे थीरम, कार्बोक्सिन, कार्बेन्डाजिम, टेबुकोनाजोल से उपचारित करें।

गेहूं ब्लास्ट की पहचान

गेहूं ब्लास्ट रोग दानों, पत्तियों तथा बालियों को संक्रमित कर दाने हल्के, बदरंग, तथा पतले कर देता है। पत्तियों पर शुरू में पानी में भीगे हुए जैसे गहरे हरे रंग के धब्बे बनते हैं। ये बाद में भूरे रंग के नाव के आकार के हो जाते हैं। संक्रमित पत्तियां जल्दी सूख जाती हैं। बालियों पर रोग भयंकर रूप में आता है। संक्रमित बालियां समय से पहले ही सूख जाती हैं तथा इनमें दाने नहीं पड़ते।

ब्लास्ट से ग्रसित बाली

- प्रतिरोधी किस्मों जैसे एचडी-2967, एचडी-3171, डीबीडब्ल्यू-39, एचडी-2043, जो कि बोलीविया में रोगरोधी पाए गए हैं, का चयन करें।
- फसल के स्वास्थ्य का सघन निरीक्षण करें तथा ब्लास्ट के लक्षण दिखने पर कवकनाशी (तिरिफ्लोइसत्रोबिन 50 प्रतिशत+टेबुकोनाजोल 25 प्रतिशत डब्ल्यूजी)/120 ग्राम/एकड़ की दर से बाली आने के समय प्रयोग करें।
- वर्ष 2017-18 में पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद एवं नादिया जिलों में गेहूं की दो साल के लिए बुआई पर पूर्ण रूप से रोक लगा दी गयी है। इसी तरह बांग्लादेश बार्डर के साथ 5 कि.मी. की दूरी तक पश्चिम बंगाल तथा असोम में गेहूं की फसल नहीं उगाई जाएगी।
- किसानों, सीमा सुरक्षा बल तथा बीज विक्रेताओं को ब्लास्ट रोग के बारे में बता दिया गया है।
- 140 नवीन गेहूं किस्मों को ब्लास्ट के लिए जांचने हेतु बोलीविया, बांग्लादेश तथा यूएसए भेजा गया है। इनमें 2 एनएस ट्रांस्लोकेशन वाली किस्में अपेक्षाकृत ज्यादा रोगरोधी पायी गयीं।
- वैज्ञानिकों को गेहूं ब्लास्ट ट्रेनिंग के लिए बोलीविया, बांग्लादेश, यूएसए एवं मैक्सिको भेजा गया। ■

चने की यांत्रिक कटाई हेतु उपयुक्त प्रजातियां

ए.के. श्रीवास्तव, जी.पी. दीक्षित और **एन.पी. सिंह**
भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसन्धान संस्थान, कानपुर (उत्तर प्रदेश)

" भारत में दलहनी फसलों में चने का एक महत्वपूर्ण स्थान है। देश में कुल दलहनी फसलों के क्षेत्रफल के 43.18 प्रतिशत भाग (16.35 मिलियन हैक्टर) वाले 25 राज्यों में चने का उत्पादन किया जाता है। इसका लगभग 96 प्रतिशत क्षेत्रफल मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक, उत्तर प्रदेश, आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात एवं झारखण्ड में है। देश में चने की लगभग 200 प्रजातियों का विकास भारत में किया गया है, जो कि विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में अच्छा प्रदर्शन करती हैं। ये प्रजातियां विभिन्न रोगों की प्रतिरोधी क्षमता से युक्त हैं। इन सभी प्रयासों के फलस्वरूप चने के क्षेत्रफल को 2000-01 के 5.19 मिलियन हैक्टर से 2015-16 तक 8.35 मिलियन हैक्टर तक बढ़ाया जा सका है। इसी प्रकार उत्पादन (3.96 मिलियन टन से 7.06 मिलियन टन) को लगभग दोगुना तथा उत्पादकता को 7.44 क्विंटल/हैक्टर से 8.59 क्विंटल/हैक्टर तक बढ़ाया जा सका है। "

चने की मशीन से कटाई वाली प्रजातियों के विकास में बहुत सी चुनौतियां हैं जैसे कि लंबी बढ़ने वाली प्रजातियों की ही कटाई एवं मड़ाई की जा सकती है। इन प्रजातियों में फलियां भूमि से कम से कम 25 सें.मी. ऊपर लगें तथा सभी दाने एक साथ पकें ताकि कटाई के वक्त दाने टूटकर जमीन पर न गिरें। यांत्रिक कटाई हेतु उपयुक्त प्रजातियों के विकास के लिए पिछले दशक में अनुसंधान शुरू किया गया था। इससे तीन प्रजातियों एनबीइजी-47, जीबीएम-2 और फूले विक्रम का विकास किया गया है। यह आंध्र प्रदेश, कर्नाटक एवं महाराष्ट्र राज्य के लिए उपयुक्त है।

एनबीइजी-47 एक देशी प्रजाति है, जो कि मध्य सीधी बढ़ने वाली है और यांत्रिक कटाई के लिए उपयुक्त है। यह आंध्र प्रदेश एवं तेलंगाना राज्य के लिए उपयुक्त है। अधिक उपज देने वाली इस प्रजाति के 100 दानों का वजन लगभग 27-28 ग्राम तक होता है। इसकी औसत उपज 20-25 क्विंटल/हैक्टर होती है। यह 90-105 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसमें फलियां लगभग 28-30 सें.मी. भूमि की ऊंचाई से ऊपर आती हैं।

चने की स्वस्थ फलियां

जीबीएम-2 प्रजाति एक पुरानी प्रजाति अन्नेगिरी-1 का प्रतिरूप है, जो कि कर्नाटक राज्य के लिए अनुमोदित की गयी है। यह अभी तक प्रचलित प्रजातियों से 2 गुना तक ऊंची होती है और इसका पौधा मजबूत होता है। इसके पौधे में फलियां ऊपर के 1/3 भाग में ही आती हैं, जो कि मशीन से कटाई के लिए उपयुक्त हैं। मशीन से कटाई में दानों का कम से कम नुकसान होता है। यह 100-110 दिनों में पककर तैयार

चने की यांत्रिक विधि से कटाई

हो जाती है। इसकी औसत उपज 18-20 क्विंटल/हैक्टर है।

'फूले विक्रम' देशी चने की प्रजाति है, जिसका विकास महाराष्ट्र राज्य के लिए किया गया है। यह प्रजाति महाराष्ट्र में मशीन द्वारा कटाई एवं मड़ाई के लिए उपयुक्त है। यह प्रजाति 96-112 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इसकी औसत उपज 16-22 क्विंटल/हैक्टर है।

यांत्रिक कटाई से चना पैदा करने वाले क्षेत्रों में किसानों की आमदनी को लागत मूल्य कम करके बढ़ाया जा सकता है। यांत्रिक कटाई से फसल को तूफान, वर्षा, ओले आदि से बचाकर किसी भी प्रकार के नुकसान से बचा जा सकता है। यांत्रिक कटाई एवं मड़ाई से मजदूरी भी कम की जा सकती है, जिससे फसल का लागत मूल्य कम किया जा सकता है। यांत्रिक कटाई के लिए उपयुक्त ऊंचे और खड़े पौधे

चने की फसल

चने में यंत्रीकरण

सम्पूर्ण विश्व में चना सुधार कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य चने के लागत मूल्य को कम करना है। भारत के किसान धीरे-धीरे यंत्रीकरण की तरफ बढ़ रहे हैं, जिससे उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि कर लागत मूल्य को कम किया जा सकता है। किसानों की मांग है कि चने की ऐसी प्रजातियां विकसित की जाएं, जिनकी कटाई एवं मड़ाई कम्बाइन हार्वेस्टर मशीन द्वारा की जा सके। वर्तमान में प्रचलित ज्यादातर प्रजातियां मशीन से कटाई हेतु उपयुक्त नहीं हैं। इसी संदर्भ को देखते हुए अब चने की लंबी प्रजातियों (70 सें.मी. से अधिक) के विकास पर अनुसंधान कार्य तेजी से चल रहा है। इससे इन प्रजातियों में सूर्य की रोशनी नीचे तक जायेगी, जिससे इनमें पत्ती रोग की आशंका भी कम हो जायेगी एवं कृषि कर्षण भी आसानी से किया जा सकेगा। उत्तरी भारत में चने के क्षेत्रफल में बढ़ोतरी हेतु यांत्रिक कटाई की उपयुक्त प्रजातियां एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

न केवल सूर्य के प्रकाश को बेहतर तरीके से ग्रहण करेंगे बल्कि इसके परिणामस्वरूप पत्ते के रोगों में भी कमी आएगी तथा फसल में कीटनाशकों का छिड़काव भी प्रभावी ढंग से किया जा सकेगा। इससे पौधों को नुकसान पहुंचाने वाले कीटों जैसे फलीभेदक इत्यादि का भी उचित प्रबंधन किया जा सकेगा। ■

भा.कृ.अनु.प. की लोकप्रिय पत्रिका
'फल फूल' सितंबर-अक्टूबर, 2018
अंक के प्रमुख आकर्षण

- नीबूवर्गीय फलों के विविधीकरण से वर्ष भर कमाई
- विनाशकारी कीट मिलीबग का प्रबंधन
- गोभी की उन्नत खेती हेतु खाद व जल प्रबंधन
- खुबानी में सिल्वर लीफ रोग का समग्र प्रबंधन
- पोषक तत्वों का खजाना है करोंदा
- मैदानी क्षेत्रों में संभव है सेब की बागवानी
- हल्दी की खेती में उपयोगी उन्नत यंत्र
- कलिकायन से बनायें देशी बेर को उन्नत
- आम के प्रसंस्करण की जानकारी के लिए दो मोबाइल ऐप
- हरी पत्तेदार सब्जियां उगाएं
- अंगूर की वाईन प्रजातियों की सफल बागवानी
- सितंबर-अक्टूबर में कैसे करें बागों की देखभाल

प्राप्ति के लिए संपर्क सूत्र: व्यवसाय प्रबंधक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-12 (दूरभाष: 25843657)

मसूर की उन्नत प्रजातियों का बीज उत्पादन

ज्ञानेन्द्र सिंह, चन्दू सिंह, रमेश चन्द, गणपति मुक्री और **संजय कुमार**
बीज उत्पादन इकाई, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

" मसूर, भारत में उगाई जाने वाली प्रमुख दलहनी फसल है। यह निर्धन वर्ग की आबादी के लिए प्रोटीन का मुख्य स्रोत है। यह फसल भारत के लगभग सभी असिंचित तथा बारानी क्षेत्रों में उगाई जाती है। इसमें प्रमुख पोषक तत्व जैसे-प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, रेशा, फॉस्फोरस, आयरन, विटामिन-सी, कैल्शियम, विटामिन-ए तथा रिबोफ्लेविन पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। मसूर की खेती से भूमि की उर्वराशक्ति बढ़ती है। भूमि की रासायनिक, भौतिक तथा जैविक दशा में सुधार होता है। इसकी खेती से 30-40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर मसूर की जड़ों में बनने वाली गांठों में एजेटोबैक्टर द्वारा भूमि में स्थिर होती है। यह अत्यंत कम लागत वाली फसल है। प्रस्तुत लेख में मसूर की उन्नत बीज उत्पादन तकनीक तथा उन्नत प्रजातियों का विस्तृत वर्णन किया गया है। "

भारत में मसूर की उत्पादकता विश्व के विकसित तथा विकासशील देशों से काफी कम होने के कारण हमें प्रति वर्ष विदेशों से दलहन का आयात करना पड़ता है। आयात को कम करने के लिए उत्पादकता बढ़ानी आवश्यक है इसके लिए उन्नत बीज उत्पादन तकनीक जैसे-खाद, उर्वरक, सिंचाई, फसल सुरक्षा आदि के साथ-साथ उन्नत प्रजातियों का बीज पैदा करना तथा कम कीमत पर किसानों को उपलब्ध कराना अति आवश्यक है।

वीएल-514

जलवायु

मसूर की उत्तम फसल के लिए समशीतोष्ण जलवायु की आवश्यकता होती है। इसकी बुआई तथा बढ़वार के समय कम तथा पकने के समय अधिक तापमान की आवश्यकता होती है। मसूर की फसल के लिए 20-32^0 सेल्सियस तापमान उपयुक्त रहता है। अंकुरण तथा फूल आने के समय पर अधिक वर्षा के कारण अंकुरण प्रभावित होता है। इससे फूल गिर जाते हैं और परागण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के कारण फलियां कम लगती हैं और पैदावार बहुत कम हो जाती है। अधिक वर्षा, ठंडे तथा गर्म क्षेत्र मसूर के बीज उत्पादन के लिए उचित नहीं रहते हैं।

प्रजातियां

मसूर को बीज के आकार तथा टेस्टवेट के आधार पर दो भागों में बांटा गया है। जिन प्रजातियों का टेस्टवेट 25 ग्राम से अधिक होता है, वे मोटे दाने वाली प्रजातियां कहलाती हैं। इन्हें स्थानीय भाषा में मसूर या मल्का मसूर के नाम से जाना जाता है। इन प्रजातियों को मुख्यत: उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश के बुंदेलखण्ड क्षेत्र तथा महाराष्ट्र में उगाया जाता है। जिन प्रजातियों का टेस्टवेट 25 ग्राम से कम होता है, वे बारीक दाने वाली प्रजातियां हैं। इन्हें स्थानीय भाषा में मसरी के नाम से पुकारा जाता है। इनका उत्पादन मुख्यत: उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल तथा असोम में किया जाता है। मसूर की प्रमुख प्रजातियों का विवरण सारणी-1 में दर्शाया गया है।

भूमि एवं उसकी तैयारी

मसूर के बीज उत्पादन के लिए दोमट या बलुई दोमट भूमि, जिसमें जल निकास तथा जलधारण क्षमता अच्छी हो, मृदा का पी-एच 7-8 के आसपास हो एवं पर्याप्त मात्रा में जीवांश पदार्थ हो, अच्छी मानी जाती है। मृदा की तैयारी के लिए 2 जुताइयां मिट्टी पलट हल या हैरो से करने के बाद 2 जुताइयां कल्टीवेटर से करनी चाहिए। प्रत्येक जुताई के समय पाटा अवश्य लगायें ताकि बुआई के समय मिट्टी भुरभुरी बन जाये।

बीज की मात्रा एवं बीज उपचार

दाने के आकार तथा प्रजातियों की बढ़वार के आधार पर सामान्यत: 25-30 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर जिसका अंकुरण 85 प्रतिशत हो, पर्याप्त रहता है। बुआई से पूर्व बीज को उपचारित अवश्य करना चाहिए, क्योंकि उपचार करने से फसल में कीट तथा व्याधियों का प्रकोप कम होता है। बीज के अंकुरण में सहायता मिलती है। इसके कारण बीज की गुणवत्ता तथा उत्पादकता में वृद्धि होती है। सर्वप्रथम बीज को कवकनाशी जैसे थायरम या बाविस्टीन 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करने के 6 घंटे बाद दीमक के नियंत्रण के लिए क्लोरोपायरोफॉस 2 मि.ली. प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचार करें। 12 घंटे छाया में सुखाने के बाद जैविक उपचार के लिए 100 ग्राम गुड़ एक लीटर पानी में उबालकर ठंडा होने के बाद 200 ग्राम राइजोबियम कल्चर को इस गुड़ के घोल में अच्छी प्रकार मिलायें। इसके बाद इस कल्चर के घोल को 25-30 कि.ग्रा. मसूर में अच्छी तरह मिलाकर छाया में अच्छी प्रकार सुखाने के बाद बुआई करनी चाहिए।

प्रजातियों का चुनाव तथा बुआई का समय

प्रजातियों का चुनाव क्षेत्र विशेष की जलवायु एवं प्रजाति गुणों जैसे उपज, बीमारी

प्रतिरोधिता, दाने के आकार आदि के आधार पर करना चाहिए। उन्नत प्रजातियों का बीज विश्वसनीय स्रोत से खरीदते समय बैग पर लिखी सभी आवश्यक सूचनायें जैसे अंकुरण, भौतिक शुद्धता, आनुवंशिक शुद्धता, लॉट नम्बर आदि सारणी-2 में वर्णित बीज मानकों के आधार पर अच्छी तरह पढ़नी चाहिए। बीज उत्पादन के लिए बुआई का समय 15 अक्टूबर से 15 नवंबर तक प्रजातियों एवं क्षेत्र के अनुसार सर्वोत्तम रहता है।

खाद एवं उर्वरक

मृदा में जीवांश पदार्थ की कमी होने की स्थिति में 150-200 क्विंटल गोबर की सड़ी खाद बुआई से पूर्व अंतिम जुताई के समय खेत में डालनी चाहिए। उर्वरकों के रूप में मसूर को 15-20 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 45-50 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है। इनकी पूर्ति हेतु 100 कि.ग्रा. डीएपी प्रति हैक्टर अंतिम जुताई के समय खेत में बिखेरकर अथवा सीडड्रिल द्वारा बीज की बुआई के साथ जड़ क्षेत्र में प्रयोग करना चाहिए।

बुआई की दूरी

बीज फसल की बुआई पंक्तियों में करनी चाहिए। पंक्तियों के बीच की दूरी सामान्यत: 30 सें.मी. रखनी चाहिए। बुआई से पूर्व सीडड्रिल का कैलिब्रेशन अवश्य करना चाहिए ताकि बीज की वांछित मात्रा की बुआई की जा सके।

खरपतवार नियंत्रण

मसूर की फसल में मुख्यत: चने की भांति बथुआ, मोथा, पीली सैंजी, जंगली सोया आदि फसल को अधिक हानि करते हैं। खरपतवार नियंत्रण के लिए बुआई के तुरंत बाद पेंडिमेथीलीन 3 लीटर दवा 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर छिड़काव करने से बुआई के 30-35 दिनों तक खरपतवार की समस्या से निजात मिल जाती है। छिड़काव करने के लिए मृदा भुरभुरी तथा बारीक होनी चाहिए, ताकि खरपतवारनाशी की परत अच्छी तरह बिछ जाये। खरपतवारनाशी के छिड़काव के बाद खेत में लगभग 30-35 दिनों तक किसी भी प्रकार की कृषि क्रियायें नहीं करनी चाहिए, अन्यथा खरपतवारनाशी की परत टूटने के कारण फसल में खरपतवार शीघ्र उगते हैं। इसके बाद कृत्रिम रूप से खरपतवारों के नियंत्रण के लिए बुआई के 45-50 दिनों बाद एक निराई-गुड़ाई करनी अति आवश्यक है।

मसूर की किस्म एल-4717

रोग प्रबंधन

- रोगरोधी प्रजाति उगानी चाहिए।
- मसूर की बुआई दोमट तथा बलुई दोमट मृदा में करनी चाहिए। भारी मृदा में मसूर की बुआई से बचें।
- फसल चक्र विशेषकर खाद्यान्नों को अपनायें।
- गर्मी में खेत की गहरी जुताई करें। बुआई समय पर करें। हल्की सिंचाई करें तथा खेत को खरपतवाररहित रखना चाहिए।
- जल निकास की व्यवस्था होनी चाहिए।
- फसल में खड़े संक्रमित पौधों को समय-समय पर निकालते रहें।
- ट्राइकोडरमा विरडी 5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से जैविक उपचार करना चाहिए।
- थायरम या बाविस्टीन 2.5 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज अथवा दोनों के मिश्रण (1:1) से उपचारित करके बीज की बुआई करनी चाहिए।
- फसल में फफूंदीजनक रोगों का अधिक प्रकोप दिखाई देने पर 2 ग्राम डाइथेन एम 45 प्रति लीटर पानी की दर से घोल बनाकर 15 दिनों के अंतर पर दो छिड़काव करने चाहिए।

सिंचाई

मसूर की फसल सामान्यत: असिंचित तथा वर्षा आधारित क्षेत्रों में उगायी जाती है। इस फसल को पानी की कम आवश्यकता होती है। जल भराव से मसूर की फसल को बहुत अधिक हानि होती है। अधिक शुष्क अवस्था में पुष्पन पूर्व एक सिंचाई देने की आवश्यकता पड़ती है।

निरीक्षण एवं अवांछनीय पौधे निकालना

शुद्ध बीज पैदा करने के लिए मसूर में दो बार निरीक्षण की आवश्यकता पड़ती है। प्रथम निरीक्षण फूल आने की अवस्था पर करके फूल के रंग तथा पौधों के गुणों के आधार पर अन्य प्रजाति के पौधों को खेत से बाहर निकाल देना चाहिए। द्वितीय निरीक्षण फलियां बनने के समय फलियों के रंग तथा पौधों के प्रजाति के गुणों के आधार पर तथा रोगग्रस्त पौधों को खेत से बाहर निकाल देना चाहिए। मसूर का बीज, मानकों के अनुसार होना चाहिए जिनका विवरण सारणी-2 में दर्शाया गया है।

फसल क्रम

भारत में निम्न फसल क्रम काफी प्रचलित हैं जैसे-धान-मसूर, मक्का-मसूर, कपास-मसूर, बाजरा-मसूर, ज्वार-मसूर, मूंगफली-मसूर, सोयाबीन-मसूर, मंडुवा-मसूर तथा अगेती अरहर-मसूर आदि।

अंतरा फसल

गेहूं+मसूर (2:1), मसूर+गन्ना (अक्टूबर) बुआई (2:1), मसूर +सरसों (2:1)

प्रमुख रोग

मसूर की फसल में निम्न रोग प्रमुख रूप से आक्रमण करते हैं:

सारणी 1. मसूर की प्रमुख प्रजातियां।

प्रजाति का नाम	अनुमोदन वर्ष	फसल की अवधि (दिन)	उत्पाद पैदावार क्विंटल/हैक्टर	अनुमोदित क्षेत्र	विवरण
आरवीएल 11-6	2017	100	12-14	उत्तरी मध्य तथा पश्चिमी क्षेत्र	दाना मोटा, उकठा प्रतिरोधी
पंत मसूर 9 (पी एल 098)	2017	135-145	15-17	उत्तराखण्ड	उकठा, जड़गलन मध्यम प्रतिरोधी
पूसा अगेती मसूर (एल 4717)	2016	96-106	12-13	उत्तरी तथा मध्य क्षेत्र	सूखा तथा तापमान प्रतिरोधी, जिंक, आयरन की अधिकता
केशवानंद मसूर-1 (आर एल जी-5)	2016	115-120	12-14	राजस्थान	बारीक दाने वाली प्रजाति
के एल बी 2008-4 (कृति)	2016	115-120	16-18	उत्तर प्रदेश	दाना मोटा,उकठा तथा रतुआ प्रतिरोधी
के एल एस 09-3 (क्रिश)	2016	105-110	14-16	उत्तर प्रदेश	दाना बारीक, उकठा प्रतिरोधी
आई पी एल 526	2016	130-135	16-18	उत्तर प्रदेश	मध्यम बड़ा दाना, उकठा तथा सूखा प्रतिरोधी
राज विजय मसूर 31 (जे एल 31)	2014	115-120	16-18	मध्य प्रदेश	दाना बड़ा, उकठा प्रतिरोधी
एल एल 931	2012	146-147	12-13	उत्तराखण्ड	रतुआ और फलीछेदक प्रतिरोधी
वी एल मसूर-133 (बी एल-133)	2011	150-155	11-12	उत्तराखण्ड	उकठा, रतुआ तथा जड़गलन प्रतिरोधी
वी एल मसूर-514 (बी एल-514)	2011	149-159	10	उत्तराखण्ड	उकठा, जड़गलन के मध्यम प्रतिरोधी, फलीछेदक प्रतिरोधी
पंत मसूर 7 (पी एल-024)	2010	140-147	15	पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश	फलीछेदक रतुआ तथा उकठा प्रतिरोधी
पंत मसूर 8 (पी एल-063)	2010	130-135	15	उत्तर-पश्चिम मैदानी क्षेत्र	रतुआ तथा उकठा मध्यम प्रतिरोधी, फलीछेदक प्रतिरोधी
पंत मसूर 6 (पी एल-02)	2010	125-145	11	उत्तराखण्ड	रतुआ, झुलसा, उकठा तथा फलीछेदक प्रतिरोधी
वी एल मसूर-129	2010	151-155	9	उत्तराखण्ड	उकठा, जड़गलन तथा फलीछेदक प्रतिरोधी
मोइट्री डब्ल्यू बी एल 77	2009	110-117	15	उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्र	उकठा प्रतिरोधी
शेखर मसूर 2 (के एल बी-303)	2009	120-128	14	उत्तर प्रदेश	उकठा तथा रतुआ मध्यम प्रतिरोधी
शेखर मसूर 3 (के एल बी-320)	2009	125-128	14	उत्तर प्रदेश	उकठा तथा रतुआ के मध्यम प्रतिरोधी
पूसा मसूर-5 (एल 45994)	2008	120-128	17-18	दिल्ली	फलीछेदक तथा रतुआ मध्यम प्रतिरोधी
आई पी एल 406 (अंगूरी)	2007	120-155	17	उत्तर-पश्चिम मैदानी क्षेत्र	उकठा तथा रतुआ प्रतिरोधी
पूसा मसूर-5 (एल 4594)	2006	125-135	17	राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र, दिल्ली	दाना बारीक, रतुआ प्रतिरोधी, मध्यम बढ़वार
वी एल मसूर 507	2006	140-209	10-12	उत्तर-पश्चिमी, उत्तर-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र	उकठा प्रतिरोधी, दाने बड़े व भूरे रंग के
हरियाणा मसूर-1 (एल एच 89-48)	2006	135-138	14	हरियाणा	सभी रोगों के प्रति मध्यम प्रतिरोधी
वी एल मसूर 125	2006	170-175	18-20	उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र	उकठा प्रतिरोधी, दाने छोटे एवं काले रंग के
वी एल मसूर 126	2006	126-150	12-16	उत्तर-पश्चिमी, उत्तर-पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र	उकठा तथा रतुआ मध्यम प्रतिरोधी, दाने छोटे काले रंग के
मालवीय विश्वनाथ (एच यू एल-57)	2005	125-130	14	उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्र	दाना छोटा, रतुआ तथा उकठा प्रतिरोधी
के एल एस 218	2005	125-130	14-15	उत्तर-पूर्वी मैदानी क्षेत्र	दाना छोटा, रतुआ तथा उकठा प्रतिरोधी
पंत मसूर-5	2001	130-135	15-18	उत्तराखण्ड	दाना मोटा, उकठा प्रतिरोधी
पूसा वैभव (एल 4147)	1997	120-125	17	उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	दाना बारीक, उकठा तथा रतुआ प्रतिरोधी, आयरन की अधिकता,
पूसा शिवालिक (एल 4676)	1995	120-125	15	उत्तर-पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	मोटा दाना, उकठा तथा रतुआ प्रतिरोधी

उकठा या म्लानि

इस रोग का संक्रमण शुरू तथा बढ़वार की अवस्था में होता है। पौधे मुरझाकर एकाएक मर जाते हैं। इसके प्रकोप से पत्तियां पीली व सूखने पर गहरी भूरी रंग की हो जाती हैं। जड़ों को बीच से चीरने पर बीच का भाग भूरा दिखाई देता है।

जड़ विगलन

इस रोग के प्रकोप से पौधे का निचला भाग, जड़ के पास का तना तथा जड़ सड़ जाती है। यह रोग भूमि में अधिक नमी के कारण फैलता है।

शुष्क जड़ विगलन

इसके प्रकोप से खेत में पूरा पौधा सूख जाता है। रोगग्रस्त पौधे की पत्तियां तथा तना भूसे के रंग के हो जाते हैं। रोगग्रस्त पौधों को निकालने पर उनकी जड़ें साफ दिखाई नहीं देती तथा जड़ों के सिरे कमजोर दिखाई देते हैं।

सफेद विगलन

यह मसूर का प्रमुख रोग है, जो विशेषत: घनी फसल तथा अधिक आर्द्रता के कारण होता है। इसके प्रकोप से पौधे के स्कंध या ऊपरी भाग में सफेद फंगस का जाल बन जाता है। इस रोग से संक्रमित पौधों की पत्तियां सूखी तथा भूसे के रंग की हो जाती हैं। इसके प्रकोप से तने के ऊपरी भाग में हल्के से गहरे काले रंग के छोटे-छोटे स्कलेरोशिया बन जाते हैं।

अगेती झुलसा

यह भी मसूर का फफूंदीजनक रोग है। यह शुरू की अवस्था में आक्रमण करता है। इसके प्रकोप से पत्तियों पर गहरे भूरे रंग से काले रंग के गोलाकार से तिकोने धब्बे बन जाते हैं।

मसूर की स्वस्थ फसल से प्राप्त दाने

कीट प्रबंधन

- बुआई से पूर्व बीज को क्लोरोपायरोफॉस से उपचारित करना चाहिए
- बुआई से पूर्व अंतिम जुताई के समय खेत में 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर रीजेन्ट का प्रयोग करना चाहिए।
- मसूर के बीज को अच्छी प्रकार सुखाकर, ग्रेडिंग करने के बाद भंडारण करना चाहिए। भंडारण के लिए सीड बिन का प्रयोग करें।
- खड़ी फसल में आवश्यकतानुसार क्लोरोपायरीफॉस या डेल्टामेथ्रिन एक मि.ली. प्रति लीटर का घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए।
- जुलाई के शुरू में बीज में फ्यूमिगेशन अवश्य करें। सल्फास की 2-3 गोलियां प्रति टन बीज की दर से धूमण करना चाहिए। यह गैस बहुत जहरीली होती है। अत: इस बात का पूर्ण ध्यान रहे कि गैस सीड बिन से बाहर न निकले।
- भंडारण में समय-समय पर डेल्टामेथ्रिन या न्यूवान 5 मि.ली. प्रति लीटर पानी का घोल बनाकर दीवारों, छतों तथा फर्श आदि पर छिड़काव करते रहना चाहिए।

सारणी 2. उन्नत बीज के मानक

बीज मानक	बीज मानकों का स्तर	
	आधार बीज	प्रमाणित बीज
दूरी	10 मीटर	5 मीटर
अन्य प्रजाति के पौधे	0.10 प्रतिशत	0.20 प्रतिशत
फसल निरीक्षण की संख्या	2 बार	2 बार
बीज लॉट का आकार (अधिकतम)	200 क्विंटल	200 क्विंटल
शुद्ध बीज (न्यूनतम)	98 प्रतिशत	98 प्रतिशत
अक्रिय तत्व (अधिकतम)	2 प्रतिशत	2 प्रतिशत
अन्य फसलों के बीज (अधिकतम)	5 प्रति कि.ग्रा.	10 प्रति कि.ग्रा.
कुल खरपतवारों के बीज (अधिकतम)	10 प्रति कि.ग्रा.	20 प्रति कि.ग्रा.
अन्य प्रजाति के बीज (अधिकतम)	10 प्रति कि.ग्रा.	20 प्रति कि.ग्रा.
अंकुरण कठोर बीज सहित (न्यूनतम)	75 प्रतिशत	75 प्रतिशत
बीज में नमी (अधिकतम)	9 प्रतिशत	9 प्रतिशत
वायुरोधी पैकिंग के दौरान बीज में नमी (अधिकतम)	8 प्रतिशत	8 प्रतिशत
कार्यशील बीज की नमूना शुद्धता विश्लेषण	60 ग्राम	60 ग्राम
कार्यशील बीज का नमूना अन्य प्रजातियों की गणना	600 ग्राम	600 ग्राम

प्रमुख कीट

दीमक

मसूर का यह प्रमुख कीट है, जो पौधों की जड़ों को खाकर हानि करते हैं। इनकी संख्या लाखों में होती है तथा बहुत तेजी से फैलती है। यह छोटे-छोटे मटमैले कीट होते हैं।

कटवर्म

यह बुआई के बाद शुरू की अवस्था में अधिक आक्रमण करता है। ये कीट जमीन से निकलकर छोटे-छोटे पौधों को काटकर हानि पहुंचाते हैं।

दाल भृंग

यह भंडारगृह में लगने वाला प्रमुख कीट है। ये भंडारित बीज में गोलाकार छेद बनाते हैं। इसके वयस्क भृंग भूरे रंग के छोटे कीट होते हैं।

कटाई एवं थ्रेसिंग

प्रजाति की अवधि एवं बुआई के समय के अनुसार मार्च से अप्रैल के अंत तक फसल पककर तैयार हो जाती है। बीज उत्पादन के लिए फसल की पूर्ण परिपक्व अवस्था पर पौधों के सूखने और फलियों के अंदर दाने पूर्ण रूप से पक जाएं और पंक्तियां भी सूख जाएं, तब फसल काट लेनी चाहिए।

ग्रेडिंग एवं पैकिंग

थ्रेसिंग के बाद बीजों की दो दिनों की धूप में अच्छी प्रकार सुखाकर, पंखे से सफाई करके ग्रेडिंग करनी चाहिए। ग्रेडिंग मशीन तथा ग्रेडिंग फ्लोर की भी अच्छी प्रकार सफाई करें ताकि मिश्रण की आशंका न रहे। ग्रेडिंग के बाद बीज को नई बोरियों में भरकर प्रत्येक बोरी पर प्रजाति का टैग लगाकर भंडारगृह में रख देना चाहिए तथा बिक्री के समय सामान्यत: 5 कि.ग्रा. या 10 कि.ग्रा. के पैक बनाकर बिक्री करनी चाहिए। ■

आदिवासी किसानों के लिए कृषि वानिकी प्रणाली

होम्बे गौडा, प्रवीण जाखड़, कर्म बीर और **एम. मधु**
भाकृअनुप-भारतीय मृदा एवं जल संरक्षण अनुसंधान संस्थान, कोरापुट-763002 (ओडिशा)

" पूर्वी घाट क्षेत्र प्राकृतिक संसाधनों से समृद्ध है और 176 लाख हैक्टर कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्र बारह (12) के अंतर्गत आता है। यह लगभग 21.3 लाख आबादी को भोजन मुहैया कराता है। मध्य पूर्वी घाट नम क्षेत्र उप-नम निचले इलाके से संबंधित है, जहां औसतन 1200-1600 मि.मी. वर्षा होती है और तापमान 5-28^0 सेल्सियस औसत रहता है। यह क्षेत्र मुख्य रूप से लाल लेटराइट मिट्टी से आच्छादित है, जिसकी भूमि जोत मुख्य रूप से छोटी और सीमांत है। यह तीन अलग-अलग प्रकार के परिदृश्य में फैली है: खड़ी ढलान भूमि, मध्यम भूमि और पानीयुक्त झोला भूमि। ऊपरी जमीन का काफी हिस्सा प्रभावी कृषि उत्पादन प्रणाली के लिए क्षमता के बावजूद खाली पड़ा है। "

मध्य पूर्वी घाट क्षेत्र में आदिवासी समुदाय पारंपरिक कृषि फसलों की खेती में लगे हैं, जो पारंपरिक उत्पादकता के साथ-साथ खेती की आय में भी कमी का कारण है। फसल विविधीकरण की कमी और वर्तमान जलवायु परिवर्तन आदिवासी किसानों को फसल की विफलता के लिए अधिक संवेदनशील बनाता है। पूर्वी घाट क्षेत्र का ढलान झूम (शिफ्टिंग) खेती के लिए लगातार इस्तेमाल किया जाता है। शिफ्टिंग खेती के पहले वर्ष के दौरान 84-170 टन/हैक्टर मृदा का क्षरण होता है। इसलिए यह परंपरा हानिकारक है। इस क्षेत्र में असुरक्षित ढलान क्षेत्र, उच्च तीव्रता के वर्षा जल बहाव और मृदा हानि की प्रक्रिया में तेजी आई है। इसने फसल उत्पादकता और कुल फार्म आय को प्रतिकूल रूप से प्रभावित किया।

राष्ट्रीय औसत की तुलना में इस क्षेत्र में औसत अपवाह और मृदा का नुकसान ज्यादा है। इन सभी कारकों ने आदिवासी किसानों को पर्याप्त बारिश और अनुकूल जलवायु के बावजूद कम कृषि उत्पादकता दी है। कृषक समाज को निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति में धकेल दिया है। हालांकि पर्याप्त बारिश और अनुकूल जलवायु उच्च कृषि क्रियाओं के लिए प्राप्त हुई, लेकिन किसान इसके उचित लाभ से वंचित हैं।

कृषि वानिकी प्रणाली

कृषि वानिकी प्रणाली (एएफएस) का संबंध उस पुरानी पद्धति से है, जिसमें वृक्षों और फसलों को जानवरों के साथ या जानवरों के बिना संयोजन के साथ बेहतर आय के लिए खेती की जाती है। यह मूल रूप से एक मिश्रित फसल प्रणाली है। इसका अर्थ है कृषि फसलों और वृक्ष प्रजातियों का सह-अस्तित्व जिससे प्राकृतिक संसाधनों का

प्रबंधन तथा सामाजिक-आर्थिक लाभ दोनों को अर्जित कर मिट्टी के स्वास्थ्य को बनाए रखने और वायुमंडलीय कार्बन को कम करना भी शामिल हैं।

मध्य पूर्वी घाट क्षेत्र में कृषि वानिकी प्रणाली का अनुकूलन

मध्य पूर्वी घाट क्षेत्र में उष्णकटिबंधीय जलवायु होती है और यहां पौधों की वृद्धि के लिए अच्छी पर्यावरण स्थिति प्रदान करने के लिए नियमित मानसून वर्षा होती है। इससे कृषि फसलों के साथ वृक्षों की खेती व्यावसायिक बारहमासी पेड़ के साथ उपयुक्त कृषि वानिकी प्रणाली को अपनाना सबसे महत्वपूर्ण कदम है। पूर्वी घाट क्षेत्र में कृषि वानिकी तंत्र के विस्तार का प्राथमिक उद्देश्य समय-समय पर सुरक्षित आर्थिक प्रतिफल के साथ तत्काल भोजन की आवश्यकता को पूरा करता है। पहले से ही कुछ प्रगतिशील किसान इस क्षेत्र में विविध कृषि वानिकी प्रणाली का अभ्यास कर रहे हैं। इनमें से कुछ प्रमुख कृषि वानिकी प्रणालियों का ब्यौरा प्रस्तुत है:

आम आधारित कृषि वानिकी प्रणाली

आम, भारत में एक महत्वपूर्ण व्यावसायिक फल की फसल है। यह दुनिया के आम उत्पादक देशों में पहले स्थान पर है। मध्य पूर्वी घाटों के क्षेत्र में आम के पेड़ अच्छी तरह से फलित होते हैं और अच्छी बढ़वार लेते हैं। आमतौर पर आम के पेड़ को पूर्ण लंबाई प्राप्त करने के लिए 8-10 साल का समय लगता है। किसान इस अवधि का उपयोग कृषि फसलों की खेती के लिए कर सकते हैं। आम की बढ़वार के बाद कृषि फसलों को उगाना लाभकारी नहीं होता है। इसलिए किसान घर की खपत और खरपतवार के नियंत्रण के लिए चारे और कम अवधि की कृषि फसलों का उत्पादन करते हैं। यह

आम आधारित कृषि वानिकी प्रणाली

प्रणाली अत्यधिक लाभप्रद प्रणालियों और सभी प्रकार के भूमिधारकों द्वारा अपनाने योग्य है। पूर्वी घाटों के ऊबड़खाबड़ इलाकों की झूम खेती भूमि के सुधार के लिए भी इसकी सिफारिश की गई है।

सफेदा पेड़ आधारित कृषि वानिकी प्रणाली

कृषि आय में वृद्धि करने के लिए सफेदा (नीलगिरी) वृक्षारोपण मॉडल को पूर्वी घाटों के क्षेत्र में संतुलित किया गया है। इस मॉडल में, नीलगिरी क्लोन की दो युग्म पंक्तियों को 6/8 मीटर चौड़ाई पर लगाया जाता है। दो युगल सफेदा की पंक्तियों के बीच कृषि पद्धति के साथ कृषि फसलों की खेती की जाती है। नीलगिरी की पंक्तियों के बीच की व्यापक रिक्तियां कृषि फसल उत्पादन के लिए पर्याप्त रोशनी आने देती हैं। नीलगिरी संकर क्लोन की ऊर्ध्वाधर और एकल तना वृद्धि सूर्य के प्रकाश में कोई बाधा उत्पन्न नहीं करती है। यह कृषि फसलों की सामान्य वृद्धि और विकास में मदद करती है और कृषि फसलों को सामान्य पैदावार की ओर ले जाती है। यह प्रणाली वार्षिक मिट्टी का आवर्त, गिरते पत्ते और छाल के मिश्रण में मदद करती है, जो अंततः सड़ने में और मिट्टी में जैविक पोषक तत्व को मिलाती है। इस प्रणाली में अलसी, रागी, सुआं, अदरक, मिर्च और मक्का जैसी फसलें उगाई जा सकती हैं। कृषि उत्पादन के अलावा, चार साल के चक्र में नीलगिरी की लकड़ी की बिक्री भी ग्रामीण किसानों के लिए अच्छी आय प्रदान करती है। साथ ही नीलगिरी के पेड़ों की नई शाखाएं ग्रामीण आबादी के लिए ईंधन की लकड़ी प्रदान करती हैं, जिससे जंगल पर दबाव कम पड़ता है। यह कृषि वानिकी मॉडल एकल फसल की तुलना में आय में वृद्धि करता है।

कृषि वानिकी प्रणाली

होम गार्डन आधारित कृषि वानिकी प्रणाली

होम गार्डन उष्णकटिबंधीय देशों के नम और नम उप आर्द्र क्षेत्रों के सबसे महत्वपूर्ण मॉडल है, जो बहुआयामी जटिल उद्यान है। इसमें विभिन्न फसलों/संयोजनों के विभिन्न प्रकार के पौधे, लकड़ी, फल और मसाले के पेड़, वार्षिक, बारहमासी फल और सब्जी फसलें इत्यादि शामिल हैं। होम गार्डन की अन्य महत्वपूर्ण विशेषताओं में इसका घरों के आसपास होना, परिवार की गतिविधियों के साथ जुड़े रहना और परिवार की जरूरतों को पूरा करने के लिए फसल और पशुधन प्रजातियों की एक विस्तृत विविधता का समाहित होना शामिल है। ये भोजन, लकड़ी, ईंधन और फाइबर के लिए घरेलू सुरक्षा में एक केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। पूर्वी घाट क्षेत्र में कई प्रगतिशील किसानों द्वारा होम गार्डन को अपनाया जाता है, जिससे उनकी आमदनी बनी रहती है।

अन्य कृषि वानिकी प्रणाली

आवश्यकता और भूमि के आधार पर, अन्य कृषि वानिकी तंत्र का भी अभ्यास किया जा सकता है, जैसे-बांधों पर पेड़, खेत की

सीमा पर वृक्ष और ब्लॉक वृक्षारोपण भी सूक्ष्म जलवायु बनाए रखने में मदद करते हैं। इस क्षेत्र में कृषि समुदाय के सुधार के लिए इस प्रकार के एएफएसएस को सुधारने और प्रोत्साहित करने और पारिस्थितिक स्थितियों में सुधार लाने का बहुत बड़ा अवसर है।

संतुलित वृक्षों और फसल संयोजनों के साथ कृषि वानिकी (एग्रीफोरेस्ट्री सिस्टम) को अपनाने से वर्षभर आय प्राप्त की जा सकती है। पेड़ के समुचित प्रबंधन और चयन के माध्यम से पर्यावरण में सुधार के दौरान किसानों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार लाया जा सकता है। एकल फसल के मुकाबले एएफएसएस सकल आय को बढ़ाती है। पूर्वी घाटों में उपलब्ध प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों के साथ कृषि वानिकी के व्यापक अनुकूलन से पर्यावरण स्वच्छता और परिवार के स्वास्थ्य और सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार किया जा सकता है।

गली फसल (एले क्रॉपिंग) आधारित कृषि वानिकी प्रणाली

गली फसल मॉडल में पौधों के पेड़ या झाड़ियां पंक्तियों में मैदानी फसलों के साथ कृषि योग्य भूमि में समोच्च रेखा के साथ लगाई जाती हैं। इस प्रणाली की विशेषता यह है कि गलियों के जैविक उत्पादन (पत्ते और डालियां) को काटा जाता है। मृदा की उर्वरता बढ़ाने के लिए रोपण से पहले मृदा में हरी खाद के रूप में शामिल किया जाता है। इसका उद्देश्य छायांकन को रोकना और कृषि योग्य फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा को कम करना है। गली फसल उच्च फसल उत्पादन को सुनिश्चित करती है, जैसे वर्षा जल बहाव और मृदा के कटाव में कमी, मृदा की उर्वरता में सुधार, ईंधन की लकड़ी और चारा आपूर्ति में वृद्धि। यह मृदा, जैविक कार्बन भंडारण को जमीन के ऊपर और नीचे जैविक उत्पादन के माध्यम से बढ़ावा देती है और मिट्टी के कटाव और स्थानांतरण में कमी करती है। बिना गली प्रणाली उत्पन्न हुई फसल की तुलना में लघु खाई के साथ ग्लाइरेसिडिया गली में 16.9-21.7 प्रतिशत अधिक फसल (रागी) उपज देती है। जबकि, लघु खाई के साथ ल्यूकेना गली 1.6-7.6 प्रतिशत तक रागी के बराबर उपज बढ़ाने में उपयुक्त है। गली फसल में बिना मैदान के मुकाबले 5-10 प्रतिशत ढलान पर रागी और धान की खेती, 10 मीटर अंतराल पर ग्लेरिसीडिया गली और लघु खाई के साथ 27.9-28.2 प्रतिशत की जल बहाव में कमी तथा 49.3-51.1 प्रतिशत की मिट्टी के कटाव में कमी पाई गई है। उसी प्रकार, लघु खाई के साथ ल्यूकेना गली 18.3-18.7 प्रतिशत और मिट्टी के कटाव में कमी 37.2-43.0 प्रतिशत द्वारा अपवाह को कम कर सकते हैं। ■

कॉफी आधारित कृषि वानिकी प्रणाली

इस क्षेत्र में कॉफी आधारित कृषि वानिकी एक महत्वपूर्ण व उपयुक्त कृषि प्रणाली है। आदर्श रूप से कॉफी फसल 500 मीटर (समुद्र तल से ऊपर) नम और उप नम क्षेत्र की ऊंचाई पर होती है, जो कि औसत तापमान सीमा 23-28^0 सेल्सियस के साथ होती है। बहुस्तरीय कॉफी वानिकी (एग्रोफोरस्ट्री) प्रणाली में कई अन्य उत्पाद उपलब्ध हैं, जैसे कि काली मिर्च, दालचीनी इत्यादि जो कि किसानों को वर्ष भर आय देते हैं। प्राकृतिक छाया पेड़ों की अनुपस्थिति में, नए कॉफी पौधे सिल्वर ओक की छाया के नीचे उगाए जा सकते हैं। ये छाया वृक्ष एक साथ कॉफी पौधों के साथ बढ़ सकते हैं। सिल्वर ओक के पेड़ों की तेजी से वृद्धि के कारण, कॉफी आधारित कृषि वानिकी प्रणाली को 5-6 साल की छोटी अवधि के भीतर विकसित किया जा सकता है। मृदा और जल संरक्षण उपायों को अपनाकर कॉफी कृषि वानिकी प्रणाली में वृद्धि और उत्पादकता को बढ़ाया जा सकता है। इस प्रणाली का एक मात्र दोष है कि इसकी तैयारी अवधि 6 वर्ष की है, जिसमें 3 वर्ष तक कॉफी उत्पादन शुरू नहीं होता है। शुरूआती 6 वर्षों के दौरान किसानों को दूसरी आय उत्पादन गतिविधियों की तलाश करनी पड़ती है। वर्तमान में मध्यपूर्वी घाट में 1,50,000 हैक्टर क्षेत्रफल में कॉफी उगाई जा रही है। इस प्रणाली से इस क्षेत्र में विस्तार करने की संभावनाएं 10 लाख हैक्टर तक हैं।

कृषि वानिकी प्रणाली के लाभ

कृषि वानिकी प्रणाली पेड़ों के घने ऊर्ध्वाधर खड़े तनों, हवा के तापमान, विकिरण प्रवाह, मृदा की नमी, मृदा उर्वराशक्ति, हवा की गति और परिवेश के तापमान को बनाए रखने से लिए सूक्ष्म जलवायु परिस्थितियों का निर्माण और नियंत्रण करती है। संशोधित जलवायु से फसल का प्रदर्शन बेहतर हो जाता है, अंततः उपज और किसान की आय में सुधार होता है। कृषि वानिकी प्रणाली का उद्देश्य फल, सब्जियां, अनाज, दालों, औषधीय पौधों आदि के साथ-साथ घरेलू पशुओं के लिए चारा उपलब्ध कराना भी है। इन खाद्य पदार्थों के द्वारा ग्रामीण परिवारों के लिए पोषण सुरक्षा और अतिरिक्त आय का स्रोत भी मिलता है। फसलों के सहयोग और पेड़ों की बढ़वार से मृदा की गुणवत्ता में सुधार होता है व मृदा के क्षरण के जोखिम को भी कम किया जा सकता है। कृषि वानिकी प्रणाली मृदा के स्वास्थ्य की स्थिति में भी सुधार करती है। इस तरह के सुधार दीर्घकालिक उत्पादकता और ऊष्ण कटिबंधों में मृदा की स्थिरता के लिए महत्वपूर्ण हैं।

कृषि वानिकी प्रणाली से लाभ ही लाभ

कार्बनिक प्रदूषक-कारक, प्रभाव व निवारण

मोहन लाल दौतानियां[1], जे. के. साहा[1], सोनालिका साहू[1], चेतन कुमार दौतानियां[2] और **अशोक कुमार पात्र[1]**

"भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि का अग्रणीय योगदान है तथा बढ़ती हुई जनसंख्या को खाद्य पदार्थ उपलब्ध कराने में इसका अहम स्थान है। एक ओर जनसंख्या में तीव्र गति से बढ़ोतरी हो रही है, तो दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन के कारण; समय के साथ बढ़ती हुई जनसंख्या को भरपेट भोजन उपलब्ध कराने में कई चुनौतियां पैदा हो गई हैं। कृषि में भूमि व जल का अहम योगदान है, लेकिन वक्त के साथ इन दोनों की गुणवत्ता में गिरावट देखी गई है। एक ओर मृदा स्वास्थ्य में ह्रास तो दूसरी ओर जल निकायों का प्रदूषित जल निकायों में तब्दील होना हमारे पर्यावरण के लिए खतरनाक है तथा मानव जीवन के पृथ्वी पर अस्तित्व पर भी एक प्रश्न चिन्ह अंकित करता है।"

विगत कुछ दशकों से कार्बनिक प्रदूषकों का स्तर बढ़ गया है तथा इनकी विषाक्तता के लक्षण भी स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगे हैं। कार्बनिक प्रदूषक से तात्पर्य है वे प्रदूषक जिनकी संरचना में कार्बन तत्व होता है। अगर हम कार्बनिक प्रदूषकों से होने वाले हानिकारक प्रभाव को देखें तो ये अत्यधिक खतरनाक हैं। पर्यावरण, मृदा तथा मानव स्वास्थ्य के लिए मृदा स्वास्थ्य मानव स्वस्थ जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि दैनिक जीवन की आवश्यकताओं जैसे: खाद्य, चारा और ईंधन इत्यादि के लिए हम मृदा पर ही निर्भर करते हैं। ज्यादातर कार्बनिक प्रदूषक संश्लेषित यौगिक होते हैं। इसके अलावा प्रकृति में प्राकृतिक तरीके से भी कार्बनिक प्रदूषक होते हैं।

कार्बनिक प्रदूषण कई कारकों के द्वारा होता है, लेकिन कुछ मुख्य कारकों का यहां उल्लेख किया गया है:

कीटनाशक

फसलों व घरेलू उपयोग में हम कई तरह के कीटनाशकों का उपयोग करते हैं जैसे: फसलनाशक, खरपतवारनाशक, फफूंदीनाशक, चूहे मारने की दवा, सूत्रकृमिनाशक, कीटनाशक इत्यादि। इनमें मुख्यतया ऑर्गेनोक्लोरिन, ऑर्गेनाफॉस्फेट, कार्बोमेट व संश्लेषित पायथ्रोराइड तथा कार्बनिक कीटनाशक शामिल हैं। इनके अलावा जैविक कीटनाशक भी प्रकृति में पाये जाते हैं तथा उनका उपयोग भी फसल उत्पादन बढ़ाने में किया जाता है। कीटनाशकों का मुख्यत: उपयोग कृषि के क्षेत्र में ही किया जाता है। लगभग 2 मिलियन टन का सालाना कीटनाशक सम्पूर्ण विश्व में प्रयोग किया जाता है, जिसका 24 प्रतिशत यू.एस.ए., 45 प्रतिशत यूरोप तथा 25 प्रतिशत शेष, विश्व के अन्य देशों द्वारा उपयोग में लाया जाता है। इस उपयोग की दर प्रतिवर्ष बढ़ती ही जाती है। अगर हम एशियाई देशों की बात करें तो चीन, कोरिया, जापान के बाद भारत का स्थान आता है। भारत में 0.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से यह उपयोग होता है। भारत में कीटनाशी का अत्यधिक उपयोग तथा वैश्विक स्तर पर फसलनाशी का उपयोग होता है, क्योंकि भारत आर्द्र-गर्म जलवायु क्षेत्र में आता है। इससे कीट-पतंगों द्वारा फसल को नुकसान अधिक होता है। कई कीटनाशकों का उपयोग मलेरिया, टिड्डी रोकथाम के लिए भी किया जाता है, जबकि पर्यावरण में उनके अवशेष कई वर्षों तक उपस्थित रहते हैं और मृदा व पर्यावरण की गुणवत्ता को हानिकारक तरीके से प्रभावित करते हैं। किसान इन कीटनाशकों के नुकसान की जानकारी के अभाव में फसल उत्पादन के दौरान इनका अंधाधुंध उपयोग करते हैं। कीटनाशकों की मात्रा मृदा के द्वारा फसल में पहुंचती है। यह कार्बनिक प्रदूषक वसा में मिलकर मनुष्य जीवों के शरीर को नुकसान पहुंचाता है। कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से जैव विविधता में भी कमी देखी गई। कीटनाशकों के अंधाधुंध उपयोग के कारण मृदा में सूक्ष्मजीवों, मृदा एंजाइम की मात्रा में भी कमी देखी गई।

अनवरत् जैविक प्रदूषक

ये विषाक्त रसायन होते हैं, जो मानव स्वास्थ्य तथा पर्यावरण के स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ को तो हम भलीभांति जानते हैं, जैसे डीडीटी, डाओजीन। जापान के इहिम विश्वविद्यालय ने अनुसंधान के बाद बताया कि POPs का मुख्य स्रोत नगरपालिका डंपिंग स्थान में पाया गया है। भारत में भी चेन्नई, दिल्ली और कोलकाता के नगरपालिका डंपिंग स्थानों पर POPs की मात्रा पाई गई है, जो कि पर्यावरण व मानव

[1]भाकृअनुप-भारतीय मृदा विज्ञान संस्थान, भोपाल-462038 (मध्य प्रदेश); [2]कृषि महाविद्यालय, स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर (राजस्थान)

स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। ये रसायन स्थिर प्रकृति के होते हैं तथा वसा ऊतकों द्वारा शरीर में संचयित होते रहते हैं। लंबे समय तक संचयन होने के कारण मनुष्य में गुर्दे व लीवर की बीमारियां होने लगती हैं। मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीवों की संख्या व विविधता भी इससे प्रभावित होती है। अनवरत जैविक प्रदूषक पर्यावरण तथा मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक हैं।

रंजक प्रदूषक

आजकल कपड़ा, दवाई व छापाखाना में कई प्रकार के रंजकों का उपयोग होता है। इनमें एजो अवयव मुख्यत: होता है। कपड़े की छपाई के दौरान कई प्रकार के रंजकों को गंदे पानी के रूप में व्यावसायिक इकाइयों से मृदा व जल निकायों में छोड़ दिया जाता है, जिससे मृदा स्वास्थ्य व जल की गुणवत्ता में ह्रास होता है। अजो-रंजन में भारी धातु क्रोमियम व कॉपर को बांधकर रखने का गुण होता है, जो मृदा से होते हुए मनुष्य के शरीर में कई प्रकार के दुष्प्रभावों को जन्म देती है। भारी धातु की कम मात्रा भी मनुष्य में कैंसर जैसे भयानक रोगों को जन्म देती है। रंजक औद्योगिक इकाइयों से निकले गंदे पानी के कारण आसपास के भूमिजल में इनके अवशेष मिले हैं जैसे रतलाम और बिछेरी में। बड़े शहरों के किनारे होने वाली फसलों में इन प्रदूषकों का नकारात्मक प्रभाव देखने को मिला है। मृदा में पाये जाने वाले सूक्ष्मजीवों की संख्या भी तीव्र गति से कम होती है, जब रंजकयुक्त गंदे पानी का उपयोग कृषि कार्यों में किया जाता है।

एंटीबायोटिक प्रदूषक

मनुष्य को बीमारियों से बचाने के लिए विभिन्न प्रकार की एंटीबायोटिक दवाइयों का प्रयोग किया जाता है। इसके अलावा इनका उपयोग कृषि व पशुपालन में भी किया जाता है। लेकिन इसका अधिकतर भाग मनुष्य या पशु के शरीर द्वारा अवशोषित नहीं होता है और यह मलमूत्र के द्वारा नगरीय गंदे पानी में मिल जाता है। इसके अलावा अस्पतालों में काम में ली जाने व बची हुई एंटीबायेटिक दवाइयों का बिना किसी उपचार के निस्तारण कर दिया जाता है, जो कि मृदा, जल व मानव स्वास्थ्य के लिए कई चुनौतियों को जन्म देती हैं। महानगरों से होकर गुजरने वाली नदियों में भी शहरी एंटीबायोटिक दवाइयों के अवशेष आसानी से मिल जाएंगे। लेकिन इस प्रदूषक के निस्तारण के लिए लोगों में भी जागरूकता कम है तथा अस्पताल भी पर्यावरण नियमों की अनदेखी करके सामान्य सीवेज नालों में बहा देते हैं। जब ये एंटीबायोटिक मृदा में प्रवेश करते हैं तो कई प्रकार से मृदा चक्र प्रभावित होते हैं। फसल की पैदावार में कमी आती है। इसके अलावा ये मनुष्य में एंटीबायोटिक प्रतिरोधक क्षमता को कम कर देती हैं, जिससे हानिकारक बैक्टीरिया, वायरस, फफूंदी पर एंटीबायोटिक दवाइयों का असर कम होता है। इनके दुष्प्रभाव से कई नये हानिकारक सूक्ष्मजीवों का उद्‌भव होता है।

रंजक प्रदूषकों से जहरीली होती फसलें

सारणी 1. मृदा सूक्ष्मजीवों द्वारा कार्बनिक प्रदूषक विघटन

सूक्ष्मजीव	प्रदूषक
क्लोस्ट्रिडियम स्पीशीज	डाइएल्ड्रिन व एल्ड्रिन
एल्कालीजीन्स स्पीशीज	
बैसिल्स स्पीशीज	
साइनोबैक्टीरिया	
स्यूडोमोनस स्पीशीज	डीडीटी
गेनोडर्मा स्पीशीज	लिण्डेन
वैसिल्स स्पीशीज	
एंट्रोबेक्टर सीरेस	क्लोरीपाइरीफॉस
ऐरोमोनस स्पीशीज	
बैसिल्स स्पीशीज	
फ्लेवोबैक्टर स्पीशीज	
आर्थ्रोबैक्टर पॉलीक्रोमोजीन्स	फीनांथ्रेन
बेकरस यीस्ट	ऐट्राजोन बेसिक रंजक
एस्पजील्स स्पीशीज	
गोर्डोना स्पीशीज	
स्यूडोमोनास प्यूरीडा	
आर्पेस लेक्टीएस	पाइरीन
डेबरी ओमाइसीज पॉलीमार्फस	प्रतिक्रियाशील काली व रंजक

निवारण

कार्बनिक प्रदूषकों के कारण होने वाले इनसे हानिकारक प्रभावों की विवेचना से पता चलता है कि इनकी विषाक्तता बहुत अधिक है, इनसे कैसे इससे बचा जा सकता है। इस बारे में कुछ उपचार व सावधानियां यहां दी जा रही हैं, जो इस प्रकार हैं:

जैविक प्रदूषकों में रसायनों की बढ़ती भूमिका

कार्बनिक प्रदूषकों का हानिकारक प्रभाव

- ये मनुष्य में कई प्रकार की बीमारियों को जन्म देते हैं जैसे मोतियाबिंद, लीवर व गुर्दा क्षति, पीलिया, कैंसर। इसके अलावा ये शरीर के तंत्रिका तंत्र, श्वसन तंत्र, हार्मोन स्रावित तंत्र तथा जनन तंत्र को भी प्रभावित करते हैं।
- इनकी सूक्ष्म सांद्रता भी पारिस्थितिकी तंत्र को असंतुलित कर सकती है, जिससे खाद्य श्रृंखला प्रभावित होती है। जैसे गिद्ध जनसंख्या का कम होना।
- इनकी कम मात्रा भी मृदा के सूक्ष्मजीवों की उपापचयी क्रियाएं तथा वृद्धि व जनसंख्या को कम कर सकती है।
- यह पौधों की वृद्धि दर तथा उत्पादकता को कम कर देती है।
- जलीय जीवों पर कार्बनिक प्रदूषकों का असर अधिक पड़ता है।

न्यूनतम उपयोग

कार्बनिक रसायनों का उपयोग कम करना चाहिए। आजकल लोग कीट-पतंगों के शुरूआती प्रकोप में ही कीटनाशकों का अंधाधुंध प्रयोग करने लग जाते हैं, जबकि रसायनों का प्रयोग जरूरत से अधिक नहीं करना चाहिए। इसके अलावा आसानी से पर्यावरण में विघटित होने वाले कार्बनिक रसायनों का प्रयोग करें। गांवों व शहरों में लोगों में विभिन्न माध्यमों से जागरूकता पैदा की जानी चाहिए। रसायनों के अधिक उपयोग वाले क्षेत्रों में खाद्य विभाग द्वारा मृदा व फसल

नदियों में घुलता एंटीबायोटिक प्रदूषण

की सामयिक जांच होनी चाहिए।

विघटित करने वाले सूक्ष्मजीवों का उपयोग

मृदा में सूक्ष्मजीव विभिन्न प्रकार की गंदगी को साफ करने वाले सफाई कर्मचारी हैं। इस प्रकार के जीव सभी प्रकार के कार्बनिक प्रदूषकों को मिट्टी से साफ नहीं कर सकते हैं। कुछ सूक्ष्मजीव सारणी-1 में दिये गये हैं, जो रसायन विशेष के प्रति संवेदनशील हैं।

मृदा एंजाइम

मृदा में उपस्थित कई प्रकार के मृदा एंजाइम भी कार्बनिक प्रदूषकों के विघटन के लिए मददगार होते हैं। ये एंजाइम विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवों द्वारा संश्लेषित होते हैं।

प्रकाश रासायनिक अपघटन

इस प्रकार की विधियां मृदा में उपस्थित PAHs व एंटीबायोटिक कार्बनिक प्रदूषकों को मृदा से हटाने के लिए काम में ली जाती हैं। इस विधि की उपयोगिता प्रदूषक की घुलनशीलता पर निर्भर करती है। इस विधि द्वारा प्रदूषक की विषाक्तता में भी परिवर्तन/कमी आती है। इसके बाद जैविक अपघटन विधियों की कार्यक्षमता में वृद्धि देखी गई।

संवर्धित सूक्ष्मजीव क्रियाएं

प्रकृति में पाये जाने वाले बीटा-प्रोटीओवेक्टर व एसिडोबेक्टर PCBs में अपघटन करने की उच्च क्षमता है। मृदा में पौधों द्वारा स्रावित जड़ रसों के कारण इन सूक्ष्मजीवों की कार्यक्षमता में बढ़ोतरी देखी गई है। सूक्ष्मजीवों के उपयोग से हम रंजक प्रदूषकों को भी मृदा से हटा/कम कर सकते हैं।

अत: कार्बनिक प्रदूषक भी अकार्बनिक प्रदूषकों की तरह ही मृदा, पादप व मानव जीवन के लिए हानिकारक हैं। इनका फसल उत्पादन व घरेलू उपयोग में उचित मात्रा व समय पर ही प्रयोग करें। इनसे होने वाले दुष्प्रभावों के बारे में आम जनता को जागरूक करके हम पर्यावरण/पारिस्थितिकी को स्वस्थ बनाये रख सकते हैं, जिससे मानव जीवन पृथ्वी पर वरदान साबित हो, न कि अभिशाप। ■

भा.कृ.अनु.प. की लोकप्रिय पत्रिका

'खेती' सितंबर, 2018 अंक के प्रमुख आकर्षण

- राईजोबियम जैव उर्वरक का खेत स्तर पर उत्पादन
- ब्यांत के बाद पशुओं में मदहीनता
- कैसे बढ़ाएं शकरकंद की उत्पादकता
- औषधीय फसलों की उन्नत खेती एवं महत्व
- स्ट्रॉबेरी उगायें-पौष्टिकता के साथ लाभ
- बकरी का दूध है स्वास्थ्य के लिए वरदान
- स्टीविया से मिठास के साथ सेहत भी
- संपोषित कृषि से संसाधनों एवं पर्यावरण का संरक्षण
- सघन खेती में उपयोगिता शून्य जुताई की
- गेहूं की फसल का रोगों और कीटों से बचाव

प्राप्ति के लिए संपर्क सूत्र: व्यवसाय प्रबंधक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय, कैब-1, पूसा गेट, नई दिल्ली-12 (दूरभाष: 25843657)

खाद्य मिलावट के जहर से स्वास्थ्य पर कहर

प्रतिभा जोशी, जे.पी.एस. डबास, निशि शर्मा, नफीस अहमद और **गिरिजेश सिंह महरा**
भाकृअनुप–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012

" सामान्यत: बाजार में उपलब्ध खाद्य पदार्थों में मिलावट का संशय बना रहता है। दालें, अनाज, दूध, मसाले, घी से लेकर सब्जी व फल तक कोई भी खाद्य पदार्थ मिलावट से अछूता नहीं है। आज मिलावट का सबसे अधिक कुप्रभाव हमारी रोजमर्रा के जीवन में प्रयोग होने वाली जरूरत की वस्तुओं पर ही पड़ रहा है। शरीर के पोषण के लिए हमें खाद्य पदार्थों की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। शरीर को स्वस्थ रखने हेतु प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन तथा खनिज लवण आदि की पर्याप्त मात्रा को आहार में शामिल करना आवश्यक है तथा ये सभी पोषक तत्व संतुलित आहार से ही प्राप्त किये जा सकते हैं। यह तभी संभव है, जब बाजार में मिलने वाली खाद्य सामग्री, दालें, अनाज, दुग्ध उत्पाद, मसाले, तेल इत्यादि मिलावटरहित हों। खाद्य अपमिश्रण से उत्पाद की गुणवत्ता काफी कम हो जाती है। खाद्य पदार्थों में सस्ते रंजक इत्यादि की मिलावट करने से उत्पाद तो आकर्षक दिखने लगता है, परंतु पोषकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, जिससे ये स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। "

सामान्य रूप से किसी खाद्य पदार्थ में कोई बाहरी तत्व मिला दिया जाए या उसमें से कोई मूल्यवान पोषक तत्व निकाल लिया जाए या भोज्य पदार्थ को अनुचित ढंग से संग्रहीत किया जाए तो उसकी गुणवत्ता में कमी आ जाती है। इसलिए उस खाद्य सामग्री या भोज्य पदार्थ को मिलावटयुक्त कहा जाएगा। भारत सरकार द्वारा खाद्य सामग्री की मिलावट की रोकथाम तथा उपभोक्ताओं को शुद्ध आहार उपलब्ध कराने के लिए सन् 1954 में खाद्य अपमिश्रण अधिनियम (पीएफए एक्ट 1954) लागू किया गया। उपभोक्ताओं के लिए शुद्ध खाद्य पदार्थों की आपूर्ति सुनिश्चित करना स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की जिम्मेदारी है। इसको ध्यान में रखते हुए उपरोक्त 'खाद्य अपमिश्रण' रोकथाम अधिनियम बनाया गया, जिसके मुख्य उद्देश्य है:

- जहरीले एवं हानिकारक खाद्य पदार्थों से जनता की रक्षा करना
- घटिया खाद्य पदार्थों की बिक्री की रोकथाम
- धोखाधड़ी प्रथा को नष्ट करके उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा करना

अपमिश्रित खाद्य पदार्थ तथा स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव

खाद्य अपमिश्रण से मूल खाद्य पदार्थ तथा मिलावटी खाद्य पदार्थ में भेद करना काफी मुश्किल हो जाता है। अपमिश्रित आहार का उपयोग करने से शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और शारीरिक विकार उत्पन्न होने की आशंका बढ़ जाती है। खाद्य अपमिश्रण से आंखों की रोशनी जाना, हृदय संबंधित रोग, लीवर खराब होना, कुष्ठ रोग, आहार तंत्र के रोग, पक्षाघात व कैंसर जैसे रोग हो सकते हैं। अनेक स्वार्थी उत्पादक एवं व्यापारी कम समय में अधिक लाभ कमाने के लिए खाद्य सामग्री में अनेक सस्ते अवयवों की मिलावट करते हैं, जो हमारे शरीर पर दुष्प्रभाव डालते हैं। सामान्यत: दैनिक उपभोग वाले खाद्य पदार्थ जैसे दूध, छाछ, शहद, मसाले, घी, खाद्य तेल, चाय-कॉफी, खोया, आटा आदि में मिलावट की जा सकती है। प्रस्तुत सारणी-2 में खाद्य पदार्थों में संभावित मिलावटी पदार्थ तथा उनसे होने वाले रोग के नाम इंगित हैं।

भोज्य पदार्थों में अपमिश्रण की जांच

व्यावहारिक रूप से खाद्य अपमिश्रण की जांच केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशालाओं में की जाती है। खाद्य अपमिश्रण के परीक्षण के लिए मैसूर, पुणे, गाजियाबाद एवं कोलकाता में भारत सरकार द्वारा चार केन्द्रीय प्रयोगशालाएं व्यवस्थित रूप से स्थापित की गई हैं:

- केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला, मैसूर,

सारणी 1. मिलावटी खाद्य पदार्थों से होने वाले रोग

क्र.सं.	खाद्य सामग्री	मिलावटी तत्व	शरीर पर दुष्प्रभाव
1.	खाद्यान्न/दालें/गुड़/मसाले	कंकड़, पत्थर, मिट्टी, रेत, बुरादा	पेट संबंधित बीमारियां व आहार तंत्र के रोग
2.	सरसों का तेल	आर्जिमोन तेल	आंखों की रोशनी जाना, हृदय संबंधित रोग एपिडेमिक ड्रॉप्सी (अनियंत्रित ज्वर व आहार तंत्र प्रभावित)
3.	चना/अरहर की दाल/बेसन	खेसरी दाल	लकवा व कुष्ठ रोग, जल शोथ व लेथारस रोग
4.	बेसन/हल्दी	पीला रंग (मेटानिल)	प्रजनन तंत्र, पाचन तंत्र, यकृत व गुर्दे प्रभावित
5.	बादाम का तेल	मिनरल तेल	यकृत संबंधित रोग, कैंसर
6.	समस्त भोज्य पदार्थ	कीटनाशक अवयव	शरीर के प्रमुख अंग निष्क्रिय होना तथा भोज्य विषाक्तता
7.	दालें	टेलकम पाउडर व एस्बेस्टस पाउडर	पाचन तंत्र प्रभावित व गुर्दे में पथरी की आशंका
8.	लाल मिर्च	रोडामाइन-बी	यकृत, गुर्दे, तिल्ली प्रभावित
9.	हल्दी	सिंदूर (लेड क्रोमेट)	एनीमिया (रक्त अल्पता), अंधापन व गर्भपात
10.	पेय पदार्थ	निषिद्ध रंग व रंजक	यकृत संबंधित रोग, रक्त अल्पता व कैंसर
11.	वर्क	एल्युमिनियम	पेट संबंधित रोग
12.	चाय पत्ती व कॉफी	लौह चूर्ण/रंग	आहार तंत्र व पाचन तंत्र प्रभावित

खाद्य मिलावट

इस अधिनियम के अंतर्गत मिलावटयुक्त भोज्य पदार्थों को अपमिश्रित माना जाता है तथा निम्नवत् भोज्य पदार्थ मिलावटयुक्त कहे जाएंगे:

- यदि दुकानदार ग्राहक की मांग के अनुसार गुणवत्ता वाला भोज्य पदार्थ देने में अक्षम हो।
- किसी खाद्य पदार्थ में उसके अभिन्न पदार्थों के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ की उपस्थिति उस खाद्य सामग्री को मिलावटी बना देती है। इसके अतिरिक्त मानक स्तर से कम स्तर वाला भोज्य पदार्थ भी अपमिश्रित माना जाता है।
- किसी खाद्य सामग्री में कोई अवयव या पदार्थ इस तरह संशोधित किया गया हो, जिससे मूल खाद्य पदार्थ की संरचना, प्रकार तथा गुणवत्ता स्तर इस प्रकार बदल जाए और शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव डाले।
- भोज्य पदार्थ से कोई अवयव आंशिक या संपूर्ण रूप से निकाल लिया गया हो।
- अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों में तैयार, पैक व अनुचित तरीके से संग्रहीत भोज्य पदार्थ को भी मिलावटयुक्त ही कहा जाएगा।
- यदि भोज्य पदार्थ पूर्णत: या आंशिक रूप से गंदा, दुर्गंधयुक्त, सड़ा हुआ या रोगग्रस्त प्राणी या वनस्पति से प्राप्त किया गया हो या वह खाद्य सामग्री कीड़ों आदि से संक्रमित हो तो इसे मानव उपयोग के लिए अपमिश्रित माना जाता है।
- यदि आदेशित मानक रंजक के अतिरिक्त कोई अन्य रंजक पदार्थ या उसकी आदेशित सीमा से भिन्न मात्रा खाद्य पदार्थ में उपस्थित हो।
- यदि किसी खाद्य सामग्री में प्रतिबंधित संरक्षक पदार्थ मिला हो या आदेशित रंजक व संरक्षण पदार्थ का मानकों से अधिक प्रयोग किया गया हो।

कर्नाटक-570013 के अंतर्गत क्षेत्र आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, केरल, तमिलनाडु, लक्षद्वीप व पुड्डुचेरी

- केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला, पुणे, महाराष्ट्र-400001 के अंतर्गत क्षेत्र गुजरात, मध्य प्रदेश, दादर तथा नगर हवेली, गोवा, दमन व दियू
- केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला, गाजियाबाद-201001, उत्तर प्रदेश के अंतर्गत क्षेत्र हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर, पंजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, चंडीगढ़ एवं दिल्ली
- केन्द्रीय खाद्य प्रयोगशाला, कोलकाता -700016, पश्चिम बंगाल के अंतर्गत क्षेत्र असोम, बिहार, मणिपुर, मेघालय, नगालैण्ड, ओडिशा, त्रिपुरा, अंडमान एवं निकोबार, अरुणाचल प्रदेश व मिजोरम।

आर्जिमोन के बीज

खाद्य पदार्थों में मिलावट की जांच के लिए इन केन्द्रीय प्रयोगशालाओं के अतिरिक्त राज्य सरकार के खाद्य निरीक्षक, भोज्य पदार्थों के नमूने को सरकारी/लोक विश्लेषक के पास भेजते हैं। एक गृहिणी प्रत्येक खाद्य पदार्थ को परीक्षण के लिए प्रयोगशाला नहीं भेज सकती। अत: यह आवश्यक है कि गृहिणी को मुख्य खाद्य पदार्थों में की जाने वाली मिलावट का अनुमान अवश्य हो। खाद्य अपमिश्रण की जांच के कुछ सरल व घरेलू परीक्षण, जिनसे कोई भी उपभोक्ता आसानी से शुद्धता की जांच कर सकता है, का संक्षिप्त विवरण सारणी-2 में दिया गया है।

काली मिर्च

सारणी 2. विभिन्न खाद्य पदार्थों में मिलावट किए जाने वाले पदार्थ एवं उनकी जांच

क्र. सं.	खाद्य पदार्थ का नाम	मिलावटी तत्व	अपमिश्रण की जांच व परिणाम
1.	दूध	पानी, स्टार्च, वाशिंग पाउडर, यूरिया	1. दूध में पानी की मिलावट की जांच लैक्टोमीटर द्वारा की जाती है। इसकी रीडिंग 28 से 34 होनी चाहिए। अगर रीडिंग 28 से निम्न जाए तो पानी की मिलावट प्रमाणित हो जाती है। 2. दूध की एक बूंद को पॉलिश की ऊर्ध्वाधर सतह पर रखने से शुद्ध दूध बहुत धीरे से बहता है पर एक सफेद निशान छोड़ता है, जबकि पानी मिला हुआ दूध बिना निशान छोड़े बह जाता है। 3. मिलावट करने वाले लैक्टोमीटर की रीडिंग बढ़ाने के लिए दूध में चीनी, स्टार्च आदि मिला देते हैं। इसकी जांच के लिए दूध में आयोडीन मिलाकर गर्म करें। यदि दूध का रंग नीला हो जाता है तो इसका अर्थ है कि दूध में स्टार्च उपस्थित है। 4. यूरिया की पहचान के लिए एक परीक्षण ट्यूब में 5 मि.मी. दूध में दो बूंद ब्रोमोथाइमोल/अल्कोहल मिलाएं। दस मिनट पश्चात नीले रंग का विकास यूरिया की उपस्थिति दर्शाता है।
2.	सरसों के बीज	आर्जिमोन	आर्जिमोन बीज की सतह खुरदरी होती है। सरसों के बीज को दबाने से वह अंदर से पीले रंग का होता है, जबकि आर्जिमोन बीज का रंग अंदर से सफेद होता है।
3.	सरसों का तेल	आर्जिमोन बीज	नमूने में सांद्र नाइट्रिक अम्ल मिलाकर मिश्रण को हिलाएं। थोड़ी देर बाद एसिड की परत में लाल-भूरे रंग की परत दिखाई दे तो यह आर्जिमोन की उपस्थिति का संकेत है।
4.	आइसक्रीम	वाशिंग पाउडर	आइसक्रीम में नीबू के रस की कुछ बूंदे डालने से बुलबुले बनने पर वाशिंग पाउडर की मौजूदगी का पता चलता है।
5.	चांदी का वर्क	एल्युमिनियम	चांदी के वर्क में एल्युमिनियम की मिलावट की आसानी से जांच की जा सकती है, क्योंकि चांदी के वर्क को जलाने पर वह छोटी गेंद के रूप में परिवर्तित हो जाता है, जबकि मिलावट वाली चांदी को जलाने के बाद गहरे ग्रे रंग का अवशेष बच जाता है।
6.	चाय-पत्ती	रंगीन पत्ते	चायपत्ती को सफेद रंग के कागज पर रगड़ने से कृत्रिम रंग कागज पर आ जाता है।
		लोहा फिलिंग	चायपत्ती के नमूने के ऊपर से चुम्बक फिराने से लौह अवयव चुम्बक में चिपक जाते हैं।
		रंग	चायपत्ती की शुद्धता की जांच के लिए चीनी मिट्टी के किसी बरतन या शीशे की प्लेट पर नीबू का रस डालकर उस पर चायपत्ती का थोड़ा सा बुरादा डालें। यदि नीबू के रस का रंग नारंगी या दूसरे रंग का हो जाता है तो इसमें मिलावट है। यदि चायपत्ती असली है, तो हरा मिश्रित पीला रंग दिखाई देगा।
7.	शहद	चीनी और पानी (चाशनी)	एक रूई के फाहे को शहद में भिगोकर उसे माचिस की तीली से जलाएं। यदि शहद अपमिश्रित है, तो रूई का फाहा नहीं जलेगा और यदि शहद शुद्ध है तो जल उठेगा।
8.	कॉफी	खजूर/इमली के बीज	कॉफी पाउडर को गीले ब्लॉटिंग पेपर पर छिड़क लें। इसके ऊपर पोटेशियम हाइड्रॉक्साइड की कुछ बूंदे डालें। यदि कॉफी के आसपास उसका रंग भूरा हो जाये तो समझ लेना चाहिए कि उसमें मिलावट है।
		चिकोरी पाउडर	कॉफी पाउडर को पानी में छिड़कने पर वह घुल जाती है, परंतु चिकोरी पाउडर बर्तन के तले में जमा हो जाएगा।
9.	लालमिर्च पाउडर	रोडामाइन कल्चर	एक परीक्षण ट्यूब में 2 ग्राम नमूना लें तथा इसमें 5 मि.मी. एसीटोन डालें। लाल रंग की तत्काल उपस्थिति रोडामाइन की मिलावट को दर्शाती है।
		ईंट पाउडर	नमूने को पानी में डालने से ईंट पाउडर पानी के तले में जमा हो जाता है।
		रंग	एक चम्मच मिर्च पाउडर को पानी भरे ग्लास में डालें। पानी रंगीन हो जाता है तो मिर्च पाउडर मिलावटी है।
10.	हल्दी पाउडर	रंग (मेटानिल पीला रंग)	एक चम्मच हल्दी को एक परखनली में डालकर उसमें सांद्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की कुछ बूंदे डालें। बैंगनी रंग दिखता है और मिश्रण में पानी डालने पर यह रंग गायब हो जाता है, तो हल्दी शुद्ध है। यदि रंग बना रहे तो हल्दी अपमिश्रित है।
11.	चने/अरहर की दाल	खेसरी दाल/ मेटानिल पीला रंग	दाल को एक परखनली में डालकर उसमें पानी डालें तथा हल्के हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की कुछ बूंदें डालने के बाद हिलाने पर यदि घोल का रंग गहरा लाल हो जाए तो समझना चाहिए कि दाल को मेटानिल पीले रंग से रंगा गया है। खेसरी दाल का परीक्षण, दाल को ध्यानपूर्वक देखकर किया जा सकता है। खेसरी दाल हल्के पीले रंग की व हरे रंग का समिश्रण लिए हुए होती है। इसके अतिरिक्त इसमें अरहर की तुलना में अधिक चिकनापन होता है।
12.	केसर	असली और नकली	केसर में मिलावट नहीं होती बल्कि पूरी केसर ही बदल दी जाती है। असली और नकली केसर की पहचान बहुत आसानी से की जा सकती है। नकली केसर को मकई की बाली को सुखाकर, चीनी मिलाकर कोलतार डाई से बनाया जाता है। नकली केसर पानी में डालने पर रंग छोड़ता है, जबकि असली केसर को पानी में घंटों रखने पर भी कोई फर्क नहीं पड़ता।
13.	शुद्ध घी व मक्खन	वनस्पति घी	एक परीक्षण ट्यूब में बराबर अनुपात में एक चम्मच पिघला हुआ घी या मक्खन तथा सांद्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल मिलाएं तथा इसमें एक चुटकी चीनी मिलाने पर यदि लाल रंग की परत दिखाई दे तो वनस्पति घी की मौजूदगी का संकेत है।
14.	कालीमिर्च	पपीते के सूखे बीज	पपीते के बीज हल्के हरे व भूरे रंग के होते हैं तथा काली मिर्च का रंग गहरा काला होता है। काली मिर्च को पानी में डाल दें यदि पपीते के बीज हैं तो वह पानी में तैरने लगेंगे और काली मिर्च डूब जाएगी।
15.	साधारण नमक	चॉक पाउडर	एक चम्मच नमक को पानी में घोलने पर अशुद्धियां तल में जमा हो जाती हैं।
16.	हींग	मिट्टी व रेत	हींग को पानी में डालने पर मिट्टी व रेत बरतन के तल में चिपक जाते हैं। शुद्ध हींग को लौ पर जलाने से लौ चमकीली हो जाती है। हींग को साफ पानी में धोने पर यदि हींग का रंग सफेद या दूधिया हो जाये तो हींग शुद्ध होती है।
17.	नारियल का तेल	खनिज तेल	नारियल तेल को ठंडा करने पर वह जम जाता है एवं खनिज तेल ऊपरी सतह पर तैरने लगता है।
18.	जीरा	घास के बीज (काले रंगे हुए)	नमूने को दोनों हथेलियों के बीच रगड़ने से यदि हथेली काली होती है तो जीरा मिलावटी होने का संकेत है।
19.	चीनी का बूरा	चॉक पाउडर	नमूने को एक गिलास पानी में मिलायें, चॉक पाउडर तल में एकत्रित हो जाएगा।
20.	चावल	रंग	चावल में मिलावट की जांच करने के लिए दोनों हाथों से चावल की कुछ मात्रा रगड़ें। यदि इसमें पीला रंग हो तो हथेली में लग जाएगा। चावल को पानी में भिगोएं और उसमें सांद्र हाइड्रोक्लोरिक अम्ल की कुछ बूंदे डालें। बैंगनी रंग की उपस्थिति पीले रंग की मिलावट को दर्शाती है।

ध्यान रखने वाली बातें

महिलायें हाइड्रोक्लोरिक अम्ल के स्थान पर घरेलू कार्य में उपयोग होने वाले एसिड तथा एसीटोन के स्थान पर नेल पालिश रिमूवर का प्रयोग कर सकती हैं।

मिलावटी पदार्थों से बचने और अपमिश्रण की पहचान के लिए गृहिणियों का जागरूक होना अति आवश्यक है। खाद्य अपमिश्रण एक अपराध है। खाद्य अपमिश्रण अधिनियम (Prevention of Food Adultration Act, 1954) के अंतर्गत किसी भी व्यापारी या विक्रेता को दोषी पाये जाने पर कम से कम 6 महीने का कारावास, जो कि तीन वर्ष तक बढ़ाया जा सकता है, का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त मानदण्ड का भी प्रावधान है। खाद्य पदार्थों में मिलावट मानव स्वास्थ्य के लिए अहितकर

पपीते के बीज की पहचान

है और इसकी रोकथाम में उपभोक्ताओं की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। प्रत्येक उपभोक्ता (विशेषकर गृहिणियों) को अपमिश्रण से बचने हेतु जागरूक होना चाहिए। इसके लिए कुछ आवश्यक बिंदुओं का ध्यान रखना चाहिए जैसे खुली खाद्य सामग्री न खरीदें। अधिकतर मानक प्रमाण चिन्ह (एगमार्क, एफपीओ , आईएसआई, हॉलमार्क) अंकित सामग्री खरीदें तथा खरीदे जाने वाली सामग्री के गुणों, रंग, शुद्धता आदि की समुचित जानकारी रखें। सदैव जानकार दुकानदारों व सत्यापित कम्पनियों का सामान लें तथा जहां तक हो सके पैकेज्ड सामान का उपयोग करते समय कम्पनी का नाम व पता, खाद्य पैकिंग व समाप्ति की तिथि, सामान का वजन, गुणवत्ता लेबल का अवश्य ध्यान रखें क्योंकि स्वस्थ और निरोगी जीवन ही सफलता की कुंजी है। ■

पोषण

ऊंटनी का दूध अब मानव आहार के लिए लाभदायक

भारत में ऊंटनी के दूध को महत्व देने के लिए कई शोध किये गए हैं। इनमें एफ.एस.एस.ए.आई. (फूड सेफ्टी एंड स्टैण्डर्ड अथॉरिटी) के प्रयोगों से प्रमाणित हुआ है कि ऊंटनी के दूध को मानव आहार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। ऊंटनी के दूध में कई प्रकार के पोषक तत्व पाए जाते हैं, जो कि मानव स्वास्थ्य के लिए बहुत लाभकारी होते हैं। एफ.एस.एस.ए.आई. के अनुसार ऊंटनी के दूध में 3 प्रतिशत वसा और 4.5 प्रतिशत प्रोटीन होता है।

शुष्क और अर्धशुष्क भूभागों के विकास में उष्ट्र प्रजाति के महत्व को देखते हुए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् द्वारा 1984 में बीकानेर (राजस्थान) में स्थापित राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केंद्र देश का एक महत्वपूर्ण अनुसंधान केंद्र होने के नाते उष्ट्र प्रजाति के संरक्षण व विकास के दायित्व से परिचित था। इस दिशा में भाकृअनुप–राष्ट्रीय उष्ट्र अनुसंधान केंद्र द्वारा सैंकड़ों नमूने एफ. एस.एस.ए.आई. को भेजे गए। जहां काफी रिसर्च के बाद ऊंटनी के दूध को मानकता प्रदान की गई।

ऊंटनी के दूध के बारे में भ्रांतियां

गौरतलब बात यह है कि ऊंटनी के

दूध के विषय में कई भ्रांतियां फैली थीं। ऊंटनी के दूध को अन्य पशुओं के दूध के साथ मिलाकर बेचने पर जेल जाने का प्रकरण भी सामने आया था। परन्तु एफ.एस.एस.ए.आई. द्वारा ऊंटनी के दूध को मानव स्वास्थ्य के लिए लाभदायक बताने के बाद इसकी बिक्री खुलेआम की जा सकेगी। भविष्य में उष्ट्र पालन एक बड़े व्यवसाय के रूप में उभरकर सामने आएगा।

उष्ट्र दूध का प्रयोग राजस्थान, गुजरात व हरियाणा प्रान्त में काफी समय से लोगों द्वारा चाय, खीर और घेवर में किया जा रहा है। अत: ऊंटनी के दूध को प्रोत्साहन देने के लिए 'कैमल मिल्क पार्लर' 2006 में और वर्ष 2008 में 'कैमल डेयरी' मुहीम प्रारंभ हुई। एक शोध द्वारा ज्ञात हुआ कि ऊंटनी का दूध मधुमेह और क्षय रोगों के प्रबंधन में कारगर सिद्ध हुआ और साथ ही पीलिया, फैटी लीवर, ड्रॉप्सी, एड्स जैसी खतरनाक रोगों में भी यह इम्यूनो सिस्टम को मजबूत बनाए रखने में मददगार साबित हुआ है। ■

प्रस्तुति: **सोनिया चौहान**

पशुओं के लिए जीवन रक्षक है अजोला

हेमलता सैनी[1] और **मोती लाल मीणा**[2]

" अजोला जल सतह पर मुक्त रूप से तैरने वाली जलीय फर्न है। यह छोटे-छोटे समूह में सघन हरित गुच्छे की तरह तैरती एवं फैलती है। भारत में इसकी प्रजाति अजोला पिन्नाटा एवं एनाबियाना काफी उपयुक्त पाई गई है। यह अधिक गर्मी सहन करने वाली किस्म है। इसकी खेती काफी वृहद रूप से चीन, वियतनाम और फिलीपीन्स में की जाती है। दक्षिण भारत में खासकर तमिलनाडु और केरल एवं कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली, अजमेर और जयपुर में काफी क्षेत्रों में इसका उत्पादन किया जा रहा है। अजोला कम लागत का, पशुओं के लिए एक पौष्टिक आहार है। शुष्क भार के आधार पर इसमें 25-35 प्रतिशत प्रोटीन, 10-12 प्रतिशत खनिज पदार्थ एवं 7-10 प्रतिशत अमीनो अम्ल पाए जाते हैं। यह शीघ्र वृद्धि वाली किस्म है। बुआई के पश्चात इसका उत्पादन 8-10 दिनों के अंदर प्राप्त होना शुरू हो जाता है। "

अजोला में ज्यादातर सभी आवश्यक अमीनो अम्ल,मेंगनी प्रोवोमोरिक्स, बायो पॉलीमर्स तथा बीटा केरोटीन पाए जाते हैं। इन्हीं जैव रसायनों से भरपूर होने के कारण यह पशुओं के लिये एक आदर्श जैविक पूरक आहार कहा जा सकता है। पशु, अजोला को आसानी से पचा सकते हैं, क्योंकि इसमें रेशा तथा लिग्निन कम मात्रा में पाया जाता है। अजोला को पूरक आहार के रूप में भी प्रयोग करने पर 15-20 प्रतिशत कुल दुग्ध उत्पादन बढ़ जाता है। देश के विभिन्न प्रदेशों एवं क्षेत्रों में चारे एवं पोषक तत्वों की कमी को पूर्ण करने के लिये अजोला उत्पादन को वृहद स्तर पर प्रोत्साहित किया जा रहा है। यह जल के स्थिर स्रोतों में प्राकृतिक रूप से भी उगाया जा रहा है।

जैव प्रौद्योगिकी विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली द्वारा वित्त पोषित एक परियोजना 'ग्रामीण जैवसंसाधनों का उपयोग कर किसानों एवं लघु उद्यमियों का सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान' की शुरुआत की गई थी। इस परियोजना के अंतर्गत दो मुख्य घटकों पर ध्यान देने की बात स्वीकार की गई।

अजोला का चुनाव खासकर इसलिए किया गया क्योंकि इसका पशुओं के लिए एक संतुलित आहार के रूप में प्रयोग किया गया है। इसमें प्रोटीन की प्रचुर मात्रा, खनिज पदार्थ एवं अमीनो अम्ल भी पाए जाते हैं। अजोला खिलाने से न केवल पशु स्वस्थ एवं निरोग रहता है बल्कि दूध की उत्पादकता में भी 10-15 प्रतिशत की वृद्धि पाई गई है। इसके अलावा शारीरिक विकास में भी यह काफी सहायक सिद्ध हुआ है। तीनों चयनित केन्द्रों पर अजोला के प्रदर्शन की एक-एक इकाई विकसित की गई है।

अजोला की छनाई

अजोला को एक सें.मी. वर्गाकार छिद्रयुक्त प्लास्टिक की छलनी के द्वारा निकाला जाता है।

[1]सहायक प्राध्यापक (प्रसार शिक्षा), आनंद कृषि विश्वविद्यालय, आनंद (गुजरात); [2]वैज्ञानिक (कृषि प्रसार), भाकृअनुप-काजरी, कृषि विज्ञान केन्द्र, पाली-मारवाड़ (गुजरात)

सारणी 1. अजोला का रासायनिक संघटन (शुष्क भार आधार पर)

क्र.स.	पोषक तत्व	मात्रा (प्रतिशत)
1	प्रोटीन	22.5
2	रेशा	12.5
3	वसा	03.2
4	कार्बोहाइड्रेट	50.0
	खनिज लवण	
5	कैल्शियम	1.16
6	फॉस्फोरस	1.29
7	मैग्नीशियम	0.35
सूक्ष्म तत्व		
1	मैंगनीज	174.42
2	जिंक/जस्ता	87.59
3	कॉपर/तांबा	16.74

निकालते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उसमें मिट्टी व गोबर का घोल न आ पाए।

अजोला की कटाई

- अजोला 8-10 दिनों में तैयार हो जाता है। इसे प्लास्टिक की छलनी से जिसके सुराख एक सें.मी. आकार के हों, निकालना चाहिए ताकि पानी गड्ढे में ही रहे।
- आधी बाल्टी पानी में अजोला को अच्छी तरह से धो लेना चाहिए। उसके बाद ही इसका प्रयोग दुधारू पशुओं के लिए किया जाना चाहिए, ताकि गोबर की गंध खत्म हो जाए, फिर पशु इसे स्वाद से खाते हैं।
- 5×1.5 मीटर के गड्ढे से लगभग डेढ़ से दो कि.ग्रा. अजोला प्रतिदिन प्राप्त किया जा सकता है।

पोषक अजोला

अजोला, अजोसी कुल का एक सदस्य है, जो कि मूलत: पानी में उगने वाला फर्न है। यह नम, आर्द्र एवं गर्म जलवायु में आसानी से उगाया जा सकता है। अजोला अपनी वृद्धि के लिए वायुमंडलीय नाइट्रोजन का उपयोग करता है, जो कि पौधे में संरक्षित रहती है। परिणामस्वरूप यह प्रोटीन से भरपूर होता है। सारणी-1 से यह ज्ञात होता है कि अजोला में खनिज तत्वों जैसे कैल्शियम, फॉस्फोरस, मैंगनीज, जस्ता तथा तांबा आदि की मात्रा पाई जाती है। इसके अलावा इसमें विटामिन 'ए' तथा विटामिन 'बी$_{12}$' काफी मात्रा में पाया जाता है। साथ ही साथ इसमें सभी आवश्यक अमीनो अम्ल पर्याप्त मात्रा में होते हैं। दुधारू पशुओं जैसे-गाय, भैंस, भेड़, बकरी आदि के आहार में सस्ते जैविक पूरक राशन के रूप में अजोला का उपयोग कर प्रोटीन तथा हरे चारे की कमी को पूरा किया जा सकता है।

पशुओं के लिए पौष्टिक आहार अजोला

अजोला उत्पादन की विधि

- कृत्रिम रूप से अजोला के उत्पादन हेतु 15-20 सें.मी. गहरे पानी के गड्ढे की आवश्यकता होती है।
- गड्ढे का आकार 4 मीटर लंबा, 1.5 मीटर चौड़ा तथा 20 सेंमी. गहरा उपयुक्त होता है।
- इसके बाद गड्ढे की सतह पर प्लास्टिक शीट बिछा देते हैं, जिससे आसपास लगे पेड़ों की जड़ें गड्ढे में न जाएं। प्लास्टिक के लगे होने से गड्ढे में रिसाव द्वारा बाहर का पानी नहीं पहुंचता तथा गड्ढे का तापमान भी नियंत्रित रहता है।
- गड्ढे में प्लास्टिक शीट इस प्रकार से बिछानी चाहिए, जिससे उसमें परत न पड़े।
- लगभग 10-15 कि.ग्रा. छनी हुई मिट्टी समान रूप से पॉलीथीन के ऊपर डाल देते हैं।
- इसके बाद 5 कि.ग्रा. गोबर, 20 ग्राम अजोफर्ट या एस.एस.पी. का 10 लीटर पानी में घोल बनाते हैं तथा इस घोल को गड्ढे में डालते हैं। इसके बाद और अधिक पानी को गड्ढे में डालते हैं, जिससे पानी का स्तर 8 सें.मी. हो जाए।
- लगभग 1-2 कि.ग्रा. ताजा रोगमुक्त अजोला का बीज गड्ढे में डालते हैं।
- अजोला 7-10 दिनों में पूर्ण वृद्धि प्राप्त कर गड्ढे में भर जाता है। इस प्रकार लगभग 4 वर्ग मीटर के गड्ढे से 2 कि.ग्रा. अजोला प्रतिदिन प्राप्त कर सकते हैं।
- प्रत्येक 7 दिनों के अंतराल पर गोबर 2 कि.ग्रा., अजोफॉस 25 ग्राम, 20 ग्राम अजोफर्ट को 2 लीटर पानी में घोलकर गड्ढे में डालते रहना चाहिए, जिससे अजोला का उत्पादन अधिक एवं टिकाऊ बना रहता है।

सारणी 2. अजोला से प्रति इकाई लाभ/लागत का ब्यौरा

उत्पाद	मात्रा	लाभ/लागत (रुपये)
लागत		
क्यारी बनाने की मजदूरी	1 मजदूर 285/- रुपये	285/- रुपये
छाया करने के लिए ग्रीन नेट, छप्पर आदि	20 वर्ग मीटर (दर 16 प्रति मीटर)	320/- रुपये
प्लास्टिक शीट (काले रंग की)	25 मीटर (दर 18 रुपये प्रति मीटर)	450/- रुपये
गोबर ताजा	25 कि.ग्रा. (दर 2 प्रति कि.ग्रा.)	50/- रुपये
अजोला बीज	5 कि.ग्रा. (50 रुपये प्रति कि.ग्रा.)	250/- रुपये
कुल लागत	-	1355/- रुपये
अजोला से लाभ	प्रतिदिन कुल उत्पादन (5 क्यारियों से), 2.5 कि.ग्रा.	125 रुपये प्रतिदिन की कमाई (37,500 रुपये का शुद्ध लाभ प्रतिवर्ष)
हरे चारे की बचत	15×3	45 रुपये की बचत प्रतिदिन

अजोला के उपयोग में सावधानियां

- पौधा परिपक्व स्थिति में न आए, इसका ध्यान रखते हैं।
- गड्ढे में जल का तापमान 30^0 सेल्सियस से कम नहीं होना चाहिए। अधिक

तापमान होने पर छप्पर या अन्य साधनों से तापमान को नियंत्रित रखना चाहिए।

- जैव पदार्थ को प्रतिदिन या एक दिन के अंतराल पर निकाल लेना चाहिए, जिससे अजोला अधिक घना न हो। अजोला के गड्ढे में जल का पी-एच प्रतिदिन देखते रहना चाहिए, जिससे कि पी-एच मान 5.5 से 7.5 हो।
- बीज को कवकनाशी तथा कीटनाशी के द्वारा शोधित करना चाहिए।
- तीन माह के अंतराल पर अजोला की मिट्टी एवं पानी को बदल देना चाहिए। इसके उपरांत गड्ढे में पॉलीथीन को निकाल कर साफ कर लेना चाहिए एवं उसमें नई मिट्टी एवं वर्मीकम्पोस्ट 10-15 कि.ग्रा. पुनः शीट पर समान रूप से फैलाकर फिर से गोबर का घोल बनाकर डाल दें और साफ अजोला डालें, जिससे अजोला का उत्पादन समान रूप से मिलता रहे।
- बीच-बीच में साफ पानी का स्तर कम होने पर अजोला के गड्ढे में पानी डालकर इसका स्तर 5-6 इंच तक बनाए रखना चाहिए।
- अजोला गड्ढे से निकाली गई मिट्टी एवं पानी को फेंकने की बजाए अपने बाग एवं खेतों में डालें, जिससे वो एक जैविक खाद के रूप में मिट्टी को मिलेगी एवं इसके पौष्टिक तत्व से जमीन को उपजाऊ बनाया जा सके।
- कीटनाशक का प्रयोग किए गए गड्ढे से निकाले गये जैव पदार्थ को पशुओं के चारे के रूप में प्रयोग नहीं करना चाहिए।
- अजोला को पशु आहार में 10-30 प्रतिशत (उपलब्धता के आधार पर) के बीच देना चाहिए। इसे सिर्फ पूरक के रूप में उपयोग करना चाहिए।

अजोला उत्पादन पर प्रशिक्षण

अजोला की उत्पादन विधि का प्रशिक्षण ग्रामीण महिलाओं, कृषकों, पशुपालकों, मछली पालकों, मुर्गीपालकों, बेरोजगार युवाओं कों के.वी.के. के माध्यम से प्रदान किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य जागरूक एवं प्रगतिशील किसानों को 'करके सीखने की विधि अपनाकर' प्रशिक्षित करना है, ताकि वे आगे प्रशिक्षार्थी के रूप में अपनी जिम्मेदारी निभा सकें। कृषि

अजोला की खेती के लिए गोबर का घोल

विज्ञान केन्द्र, पाली द्वारा पिछले 4 वर्षों में विभिन्न केन्द्रों पर 55 प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया गया जिसमें 833 कृषक किसानों एवं 542 महिलाओं ने भाग लिया एवं लाभान्वित हुए। इस तरह 1375 किसानों एवं ग्रामीण महिलाओं को प्रशिक्षित किया गया। इस प्रशिक्षण के फलस्वरूप कई किसानों ने अपने प्रक्षेत्र पर अजोला को लगाया एवं इसका उपयोग वे गाय, बकरी, भेड़, शूकर, मछली, मुर्गी एवं घोड़ों को खिलाने में कर रहे हैं। यह पाया गया कि इसको पशु चाव से खाते हैं।

अजोला का लाभ-लागत विश्लेषण

अजोला की लागत देखें तो बहुत ही कम खर्चे में अधिक मुनाफा है, क्योंकि इसमें कोई ज्यादा पैसे लगाने की जरूरत नहीं होती है। किसान अपने घर एवं प्रक्षेत्र में छायादार जगह पर इसका उत्पादन कर सकते हैं, क्योंकि इसमें सिर्फ एक प्लास्टिक शीट की जरूरत पड़ती है, क्यारी में बिछाने के लिए। अजोला से देखा जाये तो प्रतिवर्ष लगभग 37,500 रुपये का शुद्ध लाभ मिल सकता है। इस प्रकार लाभ-लागत का विवरण सारणी-2 में दिया गया है।

अजोला खिलाने से पशुओं में लाभ

अजोला संपूर्ण पोषक तत्वों का खजाना है, जिससे पशुओं के सभी पोषक तत्वों की पूर्ति होती है। पशुओं को नियमित अजोला खिलाने से उनके उत्पादन में वृद्धि होने के साथ-साथ उनके शरीर में भी वृद्धि होती है तथा पशु स्वस्थ रहते हैं। सबसे अधिक फायदा गाय में पाया गया है, क्योंकि गाय चमड़ा, कपड़े, मिट्टी आदि नहीं खाती। इसका मुख्य कारण गाय को संतुलित चारा नहीं खिलाने पर उसके शरीर में पोषक तत्वों की कमी हो जाती है, जिससे वह चमड़ा, चप्पल, कपड़े व पॉलीथीन को खाती है। सर्वे में देखा गया कि जिस गाय को प्रतिदिन अजोला खिलाया वह इन सबको नहीं खाती है। अजोला का पशुओं व जानवरों के शरीर पर प्रभाव सारणी-3 में दिया गया है। ■

सारणी 3. अजोला को पशुओं को खिलाने से उनके उत्पादन में वृद्धि एवं लाभ

पशु	मात्रा	वृद्धि शरीर भार प्रतिशत/उत्पादन
गाय	1.5 कि.ग्रा. प्रति दिन	15 प्रतिशत
भैंस	1.5 कि.ग्रा. प्रति दिन	12 प्रतिशत
बकरी	1.0 कि.ग्रा. प्रति दिन	15.9 प्रतिशत
भेड़	1.0 कि.ग्रा. प्रति दिन	16.0 प्रतिशत
मुर्गी	150 ग्राम प्रति दिन	12.5 प्रतिशत
शूकर	2.0 कि.ग्रा. प्रति दिन	20.0 प्रतिशत
घोड़ा	1.5 कि.ग्रा. प्रति दिन	11.5 प्रतिशत

अजोला का लाभ

- अजोला को गाय, भैंस, मुर्गी, भेड़, बकरी बड़े चाव से खाते हैं और आसानी से पचाते हैं, जिसके फलस्वरूप दुग्ध उत्पादन में 10-15 प्रतिशत वृद्धि पायी गयी है एवं एक माह लगातार नियमित रूप से खिलाने से बकरी, शूकर, मुर्गी के वजन में लगभग 25-30 प्रतिशत तक वृद्धि पायी गयी है।
- अजोला का प्रयोग नील-हरित शैवाल (साइनोबैक्टीरिया) के साथ धान के खेत में करने से धान के उत्पादन तथा उत्पादकता में 25-30 प्रतिशत की वृद्धि पायी गयी है।
- इसके साथ-साथ अजोला की उत्पादन विधि इतनी आसान व सरल है कि घर की महिलायें भी इसका उत्पादन कर सकती हैं। गोपशुओं एवं छोटे जानवरों जैसे बकरी, मुर्गी, बत्तख, शूकर के लिए इसका उपयोग कर कम समय में उनका औसत वजन बढ़ाकर अच्छी आमदनी की प्राप्ति कर सकते हैं।
- धान के खेत में अजोला का प्रयोग एक जैविक खाद के रूप में पाया गया है, जिसके फलस्वरूप मृदा में जैविक कार्बन की वृद्धि हुई एवं मिट्टी की उर्वरता बढ़ी है। यह कृषि को दीर्घकालीन एवं शुद्ध वातावरण बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है।

सरसों की पैदावार बढ़ाने वाली नवीनतम कृषि तकनीक

बी.एल. जाट और **आर.एल. मीना**
सहायक प्राध्यापक, कृषि विज्ञान केन्द्र, दौसा-303303 (राजस्थान)

" विश्व में तिलहन वाली प्रमुख फसलें मूंगफली, सरसों, सोयाबीन एवं सूरजमुखी हैं। अमेरिका, ब्राजील, अर्जेन्टीना, चीन व भारत प्रमुख तिलहन उत्पादक देश हैं। भारत में तिलहनी फसलों के रूप में मुख्य रूप से मूंगफली, सोयाबीन, सरसों, सूरजमुखी, कुसुम, अरण्डी, तिल एवं अलसी उगाई जाती हैं। सरसों उत्पादन एवं क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में चीन एवं कनाडा के बाद भारत का तीसरा स्थान है। भारत में सरसों प्रमुख रूप से राजस्थान, मध्य प्रदेश, हरियाणा और उत्तर प्रदेश में उगाई जाती है। खाद्य तेलों के आयात हेतु भारत सरकार को बहुत बड़ी मात्रा में विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ती है। अत: खाद्य तेलों पर आयात की निर्भरता कम करने के लिए तिलहनी फसलों का उत्पादन बढ़ाने पर अधिक जोर दिया जा रहा है। "

सरसों की फसल किसानों में बहुत ही लोकप्रिय है, क्योंकि यह फसल कम सिंचाई एवं लागत में दूसरी अन्य फसलों की अपेक्षा अधिक लाभ प्रदान करती है। सरसों के तेल में न्यूनतम संतृप्त वसा अम्ल तथा लिनोलेनिक एवं लिनोलिक अम्ल की मौजूदगी इसके लाभकारी गुणों को प्रदर्शित करती है। परंतु इसके तेल में इरूसिक अम्ल की अधिक मात्रा (35-50 प्रतिशत) अंतर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप नहीं है। इसलिए इरूसिक अम्ल की 2 प्रतिशत से कम मात्रा वाली किस्मों का विकास किया जा रहा है, जिन्हें 0 'जीरो' किस्म कहा जाता है। सरसों की खली जिसमें प्रोटीन 38-40 प्रतिशत तक होती है, एक अच्छा पशु आहार है। सरसों की खली में पाया जाने वाला 'ग्लुकोसिनोलेट' यौगिक अधिक मात्रा में होने पर कुक्कुट व सुअर के लिए यह हानिकारक माना जाता है। इस प्रकार सरसों की ऐसी किस्में विकसित की गईं जिनके तेल में इरूसिक अम्ल व खली में ग्लुकोसिनोलेट की मात्रा कम है। इस तरह की किस्मों को काउन्सिल ऑफ कनाडा ने एक ट्रेडमार्क नाम 'कनोला' दिया है। वैज्ञानिक तौर पर कनोला '00' (डबल जीरो क्वालिटी) ब्रेसिका नेपस या ब्रेसिका रापा का बीज है। सरसों की फसल में कम उत्पादन के कारणों का पता लगाने पर पाया गया कि अधिक बीज दर, उपयुक्त किस्मों का चयन न करना, असंतुलित उर्वरक प्रयोग, पादप रोग व कीटों की प्रर्याप्त रोकथाम न करना तथा नमी की सीमित मात्रा तथा खरपतवारों का अधिक प्रकोप आदि मुख्य हैं।

सरसों की अच्छी पैदावार किसानों की आर्थिक स्थिति को काफी हद तक प्रभावित करती है। अत: सरसों की खेती में नवीनतम तकनीकें अपनाकर भरपूर लाभ उठाया

जाना चाहिए। किसान भाई निम्न बातों या तकनीकों को अपनाकर सरसों का उत्पादन बढ़ा सकते हैं:

भूमि की तैयारी

सरसों की अच्छी पैदावार हेतु बलुई दोमट मिट्टी, जिसमें जल निकास की सुविधा हो तथा अत्यधिक अम्लीय व क्षारीय न हो, उपयुक्त कही जा सकती है। हालांकि क्षारीय भूमि में सरसों की सही किस्म के चुनाव से अच्छी पैदावार ली जा सकती है। जहां जमीन क्षारीय हो, वहां प्रति तीसरे वर्ष जिप्सम 50 क्विंटल प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करना चाहिए। जिप्सम को मई या जून में जमीन में मिला देना चाहिए। सिंचित क्षेत्र में पहली जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से कर तीन-चार जुताइयां हैरो से करके पाटा लगाएं ताकि खेत में ढेले न बन सकें। असिंचित या बारानी दशा में प्रत्येक वर्षा के बाद हैरो से जुताई कर नमी संरक्षित करें तथा प्रत्येक जुताई के बाद पाटा अवश्य लगाए ताकि भूमि में नमी बनी रहे।

बुआई का समय

बुआई का समय विभिन्न स्थानों पर तापमान, मानसून की स्थिति या समाप्ति तिथि एवं पूर्व में खेत में खड़ी फसल (फसल चक्र) के अनुसार भिन्न हो सकता है। बुआई का उचित समय किस्म के अनुसार सितंबर मध्य से लेकर अक्टूबर अंत तक का होता है। सरसों में अंकुरण अच्छा हो इसके लिए बुआई के समय दिन का अधिकतम तापमान 33 डिग्री सेल्सियस से ज्यादा नहीं होना चाहिए। सरसों की बुआई नवंबर में करनी हो तो देरी से बुआई के लिए उपयुक्त किस्मों का उपयोग करने से तुलनात्मक रूप से अधिक पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

उन्नत किस्में

सरसों की किस्मों को अलग-अलग परिस्थितियों में अच्छी पैदावार देने की क्षमता के अनुसार वर्णित किया गया है। किसान भाई अपनी मिट्टी की किस्म, सिंचाई की उपलब्धता और बुआई के समय के आधार पर उपयुक्त किस्म का चुनाव कर सकते हैं। तेल व खली की गुणवत्ता के आधार पर भी किसान भाई किस्मों का चयन कर सकते हैं। किस्मों की औसत उपज, तेल की मात्रा, परिपक्वता अवधि आदि प्राप्त करने के लिए उन्नत तकनीकों को अपनाना आवश्यक है।

बीज दर

बीज दर बुआई के समय, मिट्टी में नमी की मात्रा एवं प्रयुक्त किस्म पर निर्भर करती है। पंक्ति में बोई गई सिंचित फसल के लिए बीज दर 4 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर पर्याप्त है।

सरसों की बम्पर पैदावार

सरसों के प्रमुख रोग एवं उनका प्रबंधन

सफेद रोली

रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियों की निचली सतह में सफेद रंग के छोटे-छोटे फफोले बनते हैं। इन फफोलों के ठीक ऊपर पत्ती की ऊपरी सतह पर गहरे भूरे/कत्थई रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। फसल पर रोग के लक्षण दिखाई देते ही मैन्कोजेब या रिडोमिल एमजेड-72 डब्ल्यूपी फफूंदनाशक के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें तथा आवश्यकता पड़ने पर 15 दिनों के अंतराल पर छिड़काव को पुन: दोहराएं।

मृदुरोमिल आसिता

इस रोग में सर्वप्रथम नई पत्तियों पर मटमैले रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। ये धब्बे पत्तियों की निचली सतह पर फफूंद की वृद्धि के कारण बनते हैं। इस रोग के नियंत्रण हेतु बीज को मेटालेक्सिल 2.0 ग्राम सक्रिय तत्व (एप्रोन 35 एस.डी. 6.0 ग्राम) प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित कर बुआई करनी चाहिए। खड़ी फसल में रोग के लक्षण दिखाई देते ही रिडोमिल एमजेड 2 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें। आवश्यकता पड़ने पर 10-15 दिनों के अंतराल पर इस छिड़काव को पुन: दोहराएं।

छाछ्या

इस रोग में सर्वप्रथम पुरानी पत्तियों में दोनों तरफ फफोले दिखाई देते हैं। अनुकूल वातावरण की स्थिति में ये फफोले तेजी से फैलकर पूरी पत्ती को घेर लेते हैं, जिससे पत्ती की भोजन बनाने की क्षमता कम हो जाती है। इस रोग के नियंत्रण हेतु घुलनशील सल्फर 2.0 ग्राम या डाइनोकेप एक मि.ली. प्रति लीटर की मात्रा का घोल बनाकर छिड़काव करें तथा आवश्यकता पड़ने पर इस घोल को 15 दिनों के अंतराल पर दोहराएं।

तना गलन

इस रोग में तने के निचले भाग पर फफोलेनुमा संरचना दिखाई देती है। प्राय: ये फफोले रुई जैसे कवक जाल से ढके रहते हैं। कुछ समय बाद तने को चीरकर देखने पर काली-काली चूहे की मेंगनी जैसी संरचना पाई जाती है। इस रोग की रोकथाम हेतु कार्बेण्डाजिम एक ग्राम प्रति लीटर फफूंदीनाशक का छिड़काव बुआई के 50 एवं 70 दिनों बाद करने से रोग से बचाव किया जा सकता है। जिन क्षेत्रों में अक्सर यह रोग दिखाई देता है, वहां पर ट्राइकोडर्मा जैविक नियंत्रक 2.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से गोबर की खाद में मिलाकर 10-15 दिनों तक इसकी बढ़वार करवाई जाती है।

बीज उपचार

सरसों में तना गलन रोग से बचाव हेतु बीजों को कार्बेण्डाजिम एक ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करें। यदि यह रसायन उपलब्ध न हो तो 2 प्रतिशत लहसुन के सत से उपचारित करें। लहसुन का 2 प्रतिशत सत बनाने के लिए 20 ग्राम लहसुन को मिक्सी या पत्थर पर बारीक पीसकर कपड़े से अच्छी तरह छानकर एक लीटर पानी में मिलाकर घोल तैयार किया जाता है। यह मात्रा 5-7 कि.ग्रा. बीज के उपचार के लिए प्रर्याप्त है। जिन क्षेत्रों में सफेद रोली रोग की समस्या है वहां पर एप्रोन 35 एसडी की 6 ग्राम मात्रा प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से बीज उपचार करें।

बुआई की विधि

बीज को पौधों से पौधों के बीच की दूरी 10 सें.मी. रखते हुए 4-5 सें.मी.

सारणी 1. सरसों की विभिन्न उत्पादन परिस्थितियों हेतु मुख्य किस्में

क्र. सं.	विभिन्न उत्पादन परिस्थितियां	किस्में
1.	समय पर बुआई वाली सिंचित क्षेत्र की किस्में	एन.आर.सी.डी.आर.-2, बायो-902, पूसा बोल्ड, आर.एच.-30, लक्ष्मी, वसुंधरा, जगन्नाथ, रोहिणी, आर.जी.एन.-73, पूसा मस्टर्ड-21, पूसा मस्टर्ड-22, एन.आर.सी.डी.आर.-601, एन.आर.सी.एच.बी.-101, एन.आर.सी.वाई.एस.-05-02 (पीली सरसों), गिरिराज (आई.जे.-31), आर.एच.-749
2.	संकर किस्में	एन.आर.सी. एच.बी.-506, डी.एम.एच.-1, पी.ए.सी.-432 (कोरल), पी.ए.सी.-437 (कोरल)
3.	असिंचित क्षेत्र की किस्में	अरावली, गीता, आर.जी.एन.-48
4.	अगेती बुआई के लिए	पूसा अग्रणी (सेग-2)
5.	देर से बोई जाने वाली किस्में	एन.आर.सी.एच.बी.-101, स्वर्ण ज्योति, आशीर्वाद, आर.आर.एन.-505, आर.जी.एन.-145
6.	लवणीय मृदा की किस्में	सी.एस.-54, सी.एस.-52, नरेन्द्र राई-1
7.	उच्च गुणवत्ता या कनोला किस्में	पूसा मस्टर्ड-22, पूसा मस्टर्ड-29, पूसा मस्टर्ड-30,

गहरा बोयें। पंक्ति की दूरी 30 सें.मी. रखें। असिंचित क्षेत्रों में बीज की गहराई, नमी के अनुसार रखें।

उर्वरकों का प्रयोग

उर्वरकों का संतुलित प्रयोग करने हेतु मृदा परीक्षण जरूरी है। सिंचित फसल के लिए 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 30-40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस डी.ए.पी. से देना हो तो 250 कि.ग्रा. जिप्सम या 40 कि.ग्रा. गंधक चूर्ण दें। फॉस्फोरस सिंगल सुपर फॉस्फेट से देना हो तो 80 कि.ग्रा. जिप्सम प्रति हैक्टर अंतिम जुताई के समय बिखेरकर दें। नाइट्रोजन की आधी मात्रा का पहली सिंचाई के साथ छिड़काव करें। असिंचित क्षेत्रों में उर्वरकों की आधी मात्रा (30 कि.ग्रा. नाइट्रोजन एवं 15 कि.ग्रा. फॉस्फोरस) बुआई के समय काम में लेनी चाहिए।

सिंचित व कम पानी की स्थिति में सरसों की अधिक उपज लेने हेतु 500 पीपीएम थायोयूरिया (5.0 ग्राम प्रति 10 लीटर पानी) या 100 पीपीएम थायोग्लाइकोलिक एसिड (1.0 मि.ली. प्रति 10 लीटर पानी) का घोल बनाकर दो छिड़काव 50 प्रतिशत फूल अवस्था पर (बुआई के लगभग 40 दिनों बाद) तथा दूसरा छिड़काव उसके 20 दिनों बाद करना चाहिए।

जिंक की कमी होने पर भूमि में बुआई से पहले 25 कि.ग्रा. जिंक सल्फेट प्रति हैक्टर अकेले या जैविक खाद के साथ प्रयोग किया जा सकता है। अन्यथा खड़ी फसल में जिंक की कमी के लक्षण दिखाई देने पर लेब ग्रेड का जिंक सल्फेट 0.5 प्रतिशत (200 लीटर पानी में एक कि.ग्रा. जिंक सल्फेट) का घोल बनाकर सरसों के फूल आने तथा फलियां बनते समय छिड़काव करना चाहिए। बोरॉन की कमी वाली मृदाओं में 10 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हैक्टर की दर से खेत में बुआई से पूर्व मिला दिया जाए तो पैदावार में बढ़ोतरी होती है।

खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार नियंत्रण व खेत में नमी संरक्षण के लिए पहली सिंचाई से पूर्व ही निराई-गुड़ाई करनी चाहिए। सरसों में खरपतवार प्रबंधन हेतु पेण्डीमिथेलीन 30 ई.सी. 750 ग्राम सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर (लगभग 3 लीटर दवा) शाकनाशी का बुआई के बाद किंतु बीज उगने से पूर्व 500-700 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करना चाहिए। पहली सिंचाई के बाद 'दो पहिए वाली हस्तचालित-हो' के द्वारा निराई-गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण के साथ फसल की वृद्धि भी अच्छी होती है।

सिंचाई

प्रथम सिंचाई 28-35 दिनों बाद फूल आने से पहले करें तथा आवश्यकतानुसार दूसरी सिंचाई 70-80 दिनों बाद फलियां बनते समय करनी चाहिए। जहां पानी की कमी हो या खारा पानी हो वहां सिर्फ एक ही सिंचाई करना अच्छा रहता है। यदि सिंचाई का पानी क्षारीय है तो पानी की जांच करवाकर उचित मात्रा में जिप्सम और गोबर की खाद का प्रयोग करें।

ओरोबैंकी प्रबंधन

ओरोबैंकी की रोकथाम हेतु फसल चक्र अपनाएं, खासतौर पर गेहूं, जौ या चना। गर्मियों में खेत की गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से करें। ओरोबैंकी खरपतवार के बीज बनने से पहले ही उखाड़कर नष्ट करें। कृषि उपकरणों को सफाई के बाद ही काम में लें। हमेशा स्वस्थ एवं प्रमाणित बीज, जो परजीवी बीजों से मुक्त हों, बुआई के काम में लें। सिंचित फसल की अवस्था में अंकुरण के 25 दिनों बाद 25 ग्राम व 50 दिनों बाद 50 ग्राम ग्लाइफोसेट का जड़ों की तरफ निर्देशित छिड़काव करने पर इस खरपतवार का नियंत्रण किया जा सकता है।

कटाई

जब 75 प्रतिशत फलियां पीली पड़ जायें तो फसल की कटाई कर लेनी चाहिए।

गहाई

जब बीजों में नमी 12-20 प्रतिशत हो तो गहाई करनी चाहिए।

उपरोक्त तकनीकों को अपनाकर किसान भाई सरसों की पैदावार में अपेक्षित बढ़ोतरी कर सकते हैं। ■

सरसों के कीट व प्रबंधन

आरा मक्खी

इस कीट की लटें पत्तियों को तेजी से खाती हैं, जिससे पत्तियों में अनेक छेद हो जाते हैं। तीव्र प्रकोप होने पर पत्तियों के स्थान पर शिराओं का जाल ही शेष रह जाता है। इस कीट की रोकथाम हेतु मेलाथियान 50 ई.सी. की 500 मि.ली. मात्रा को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें।

पेन्टेड बग या चितकबरा कीट

यह एक रस चूसने वाला कीट है, जिसके वयस्क एवं शिशु दोनों ही समूह में एकत्र होकर पौधों से रस चूसकर उसको नुकसान पहुंचाते हैं। इस कीट की रोकथाम हेतु मेलाथियान 5 प्रतिशत या कार्बेरिल 5 प्रतिशत चूर्ण 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से प्रातः या सायं भुरकें।

चेंपा या माहूं

ये कीट झुंड में रहते हैं तथा तीव्र गति से वंश वृद्धि करते हैं तथा फूलों की टहनियों से शुरू होकर पूरे पौधे पर फैल जाते हैं, जिससे पौधों की बढ़वार रुक जाती है। जब फसल में कम से कम 10 प्रतिशत पौधों की संख्या चेंपाग्रस्त हो अथवा 26-28 चेंपा कीट प्रति पौधा हो तो रोकथाम के उपाय करना आवश्यक हो जाता है। चेंपा की रोकथाम हेतु डाइमेथोएट 30 ई.सी. या मोनोक्रोटोफॉस 36 घुलनशील द्रव्य की एक लीटर मात्रा को 600-800 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर छिड़काव करें। छिड़काव सायंकाल के समय में करने पर परागण करने वाले कीटों पर प्रतिकूल प्रभाव कम पड़ता है। यदि चेंपा के प्राकृतिक शत्रु जैसे लेडीबर्ड बीटल, सिरफिड तथा ग्रीन लेसविंग पर्याप्त मात्रा में मौजूद हो तो छिड़काव करने की जरूरत नहीं होती है।

अलसी का पौष्टिक महत्व एवं वैज्ञानिक खेती

अभय कुमार सिंह[1] और **आरती सिंह**[2]

" विश्व में भारत का तिलहन उत्पादन में प्रमुख स्थान है। अर्थव्यवस्था के अनुसार अमेरिका और चीन के बाद भारत विश्व का तीसरा सबसे बड़ा वनस्पति तेल उत्पादक देश है। तिलहन क्षेत्र, उत्पादन और मूल्य के मामले में अनाज के बाद ही आते हैं। वर्तमान में भारत में तिलहनी फसलों का क्षेत्रफल लगभग 13 प्रतिशत है। विश्व के तेल उत्पादन में हमारा योगदान 7 प्रतिशत है और विश्व के कुल खाद्य तेल की खपत में 10 प्रतिशत योगदान भारत का है। देश में 26.1 मिलियन हैक्टर क्षेत्र तिलहनी फसलों के अंतर्गत आता है, जो कि 27.98 मिलियन टन उत्पादन देता है और 10.10 क्विंटल/हैक्टर की उत्पादकता देता है। यह सकल राष्ट्रीय उत्पाद का करीब 3 प्रतिशत और सभी कृषि उत्पादों के मूल्य का लगभग 10 प्रतिशत हिस्सा है। 1986 में तिलहनों पर तकनीकी मिशन (टीएमओ) की स्थापना के बाद से तिलहनी फसलों ने उल्लेखनीय सफलता हासिल की है। इसमें उच्च आयात शुल्क की सुरक्षा छतरी द्वारा सहायता प्रदान की गई थी। "

अलसी का बोटेनिकल नाम *लिनम उसीटेटिसिमम* है। यह परिवार लिनेसी के जीनस लिनम का एक सदस्य है। इसे अंग्रेजी में लिनसीड यानी अति उपयोगी बीज भी कहा जाता है। यह विश्व की छठी सबसे बड़ी तिलहन फसल है। भारत में यह एक महत्वपूर्ण *रबी* तिलहन फसल और तेल और रेशे का एक प्रमुख स्रोत भी है। विश्व के अलसी उत्पादन में भारत का पहला स्थान है और क्षेत्र में तीसरा स्थान है। यह देश की सबसे महत्वपूर्ण औद्योगिक तिलहन फसल है। मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, ओडिशा और बिहार प्रमुख अलसी उत्पादक राज्य हैं। देश में अलसी मुख्य रूप से मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़ और बिहार राज्यों में उगाई जाती है। क्षेत्रफल व उत्पादन की दृष्टि से मध्य प्रदेश का देश में प्रथम स्थान है।

पौष्टिक महत्व

अलसी एक चमत्कारी आहार है। इसमें दो आवश्यक फैटी एसिड पाए जाते हैं। अल्फा-लिनोलेनिक एसिड (ALA) और लिनोलेनिक एसिड (LA)। इन्हें उन खाद्य आवेदनों में प्रयोग किया जाता है, जहां स्थिरता की आवश्यकता होती है। लिनोलेनिक एसिड और लिनोलिक एसिड को मनुष्य के लिए अपरिहार्य माना जाता है और उन्हें खाद्य तेलों और वसा से प्राप्त किया जाना चाहिए। यदि इसका नियमित सेवन किया जाए तो कई प्रकार के रोगों से बचा जा सकता है। यह कैंसर, टी.बी., हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, कब्ज, जोड़ों का दर्द आदि कई रोगों से हमें बचा सकता है। अलसी में लगभग 18 प्रतिशत ओमेगा-3 फैटी एसिड होता है तथा अल्फा लिनोलेनिक एसिड, लिग्नेन, प्रोटीन व फाइबर होता है। अलसी पृथ्वी पर ओमेगा-3 फैटी एसिड का सबसे बड़ा स्रोत है। हमारे शरीर में इसका संश्लेषण नहीं होता है। इस कारण से इसकी आपूर्ति बाहरी स्रोत द्वारा ही की जानी चाहिए। अलसी में ओमेगा-6 और ओमेगा-3 का अनुपात 0.3 : 1 होता है। इस प्रकार अलसी ओमेगा-3 का एक अच्छा प्राकृतिक स्रोत है। हमारे दैनिक भोजन में ओमेगा-6 की मात्रा अधिक होती है, जिस वजह से असंतुलन की स्थिति बन जाती है। इस संतुलन को बनाए रखने के लिए ओमेगा-3 को अधिक मात्रा में लेना चाहिए। इसलिए अलसी को हमारे दैनिक भोजन में सम्मिलित करना चाहिए। ओमेगा-3 की यह कमी हम प्रतिदिन 30 से 60 ग्राम अलसी के सेवन से पूरी कर सकते हैं। यह हमारे शरीर में अच्छे कॉलेस्ट्रोल की मात्रा को बढ़ाता है और ट्राइग्लिसराइड कॉलेस्ट्रोल की मात्रा को कम करने में सहायक होता है। यह हमारे हृदय की धमनियों में खून के थक्के बनाने से रोकता है और हृदय घात व स्ट्रोक जैसी बीमारियों से भी हमारा बचाव करता है।

ओमेगा-3 के अलावा अलसी का दूसरा महत्वपूर्ण अवयव लिग्नेन है। अलसी में इसकी मात्रा 0.8 से 12.0 मि.ग्रा./ग्राम होती है। यह एंटीबैक्टेरियल, एंटीवायरल, एंटीफंगल, एंटीऑक्सीडेंट तथा कैंसररोधी है। यह शरीर में कॉलेस्ट्रोल कम करता है और रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है। अलसी में लगभग 28 प्रतिशत रेशा होता है और यह कब्ज के रोगियों के लिए बहुत राहतमंद साबित होता है। डब्ल्यूएचओ भी इसे सुपर स्टार भोजन का

[1]भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012; [2]भाकृअनुप-भारतीय चावल अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद-500030

दर्जा देता है। महात्मा गांधी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि जहां अलसी का सेवन किया जाएगा, वह समाज स्वस्थ और समृद्ध रहेगा।

अलसी उत्पादन तकनीक

जलवायु

यह एक ठंडे मौसम की फसल है। इस फसल में वानस्पतिक वृद्धि के समय वातावरण का तापमान मध्यम ठंडा होना चाहिए। यदि पुष्पावस्था के समय तापमान 32^0 सेल्सियस से अधिक हो जाए व मृदा में पानी की कमी हो जाए तो फसल की पैदावार और बीज में तेल की मात्रा व तेल की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है। यह पाले के प्रति अति संवेदनशील है। यदि फूल बनने के समय पाला पड़ जाए तो फसल के लिए अत्याधिक नुकसानदायक है। वृद्धि अवस्था में अधिक वर्षा फसल के लिए हानिकारक होती है। भारत में अलसी वर्षा ऋतु समाप्त होने पर लगाई जाती है। इस दौरान फसल मृदा में संचित नमी से अपनी पानी की आवश्यकता की पूर्ति करती है।

भूमि का चुनाव

अलसी को सभी प्रकार की भूमि में आसानी से उगाया जा सकता है। दोमट से मटियार मिट्टी, जिसमें पर्याप्त जल निकास की व्यवस्था हो, उपयुक्त मानी जाती है।

खेत की तैयारी

अलसी के अच्छे अंकुरण के लिए खेत को अच्छी तरह से तैयार करना चाहिए। इसके लिए खेत की एक बार मिट्टी पलटने वाले हल से व दो से तीन बार डिस्क हैरो से जुताई करनी चाहिए। अंतिम जुताई से पूर्व 8-10 टन प्रति हैक्टर की दर से गोबर खाद डालकर व पाटा लगाकर खेत को समतल कर लेना चाहिए।

बुआई का समय

बीज की उपज बढ़ाने के लिए बुआई की तारीख का समायोजन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, क्योंकि बीज की पैदावार पर्यावरण स्थितियों पर निर्भर करती है। अच्छी पैदावार के लिए बुआई का समय बहुत ही महत्वपूर्ण है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के लिए अलसी की बुआई का समय अलग-अलग है। इसकी बुआई अक्टूबर के प्रथम सप्ताह से लेकर नवंबर के प्रथम सप्ताह तक की जा सकती है। यदि बुआई इसके बाद की जाती है तो फसल की वृद्धि और उपज पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। बुआई के समय में देरी से फसल के प्रजनन विकास के दौरान पर्यावरणीय तापमान में वृद्धि हो जाती है, जिससे बीज की गुणवत्ता कम हो जाती है। फसल का विकास चरण उपज और इसके सहायक पात्रों की बेहतर अभिव्यक्ति के लिए इष्टतम पर्यावरणीय परिस्थितियों के साथ समकालीन होना चाहिए। प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग को अधिकतम करने के लिए उचित बुआई की तारीख बहुत ही महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह अच्छा बीज अंकुरण सुनिश्चित करता है। साथ ही साथ समय पर अंकुर और जड़ों का इष्टतम विकास सुनिश्चित करता है।

उपयोगी अलसी

इसके तेल का इस्तेमाल कई उत्पादों में किया जाता है, जिसमें पेंट, वार्निश, लिनोलियम, ऑयल क्लॉथ, प्रिंटर की स्याही और चमड़े के उत्पाद शामिल हैं। अलसी का उपयोग कम से कम 5000 वर्षों से कपड़ा बनाने में किया जा रहा है। इसका रेशा रंग में हल्का पीला, नरम और चमकदार लेकिन कम लचीला और कपास की तुलना में अधिक मजबूत होता है। गर्म मौसम में पहनने के लिए लिनेन उपयोगी है, क्योंकि यह आसानी से पानी को अवशोषित कर लेता है। सिगरेट के लिए रोलिंग पेपर और अधिक गुणवत्ता वाले रेशे को मुद्रा नोट बनाने के लिए भी उपयोग किया जाता है।

अलसी के पौधे में नीले, सफेद एवं बैंगनी रंग के फूल आते हैं व इसके बीज तिल से थोड़े बड़े, भूरे, भूरे-पीले रंग के होते हैं। इसकी सतह चिकनी, लसदार व तैलीय प्रकृति की होती है। अलसी का तेल बहुत गुणकारी होता है। अगर त्वचा जल जाए तो अलसी के उपयोग से दर्द व जलन में राहत मिलती है। अलसी के बीज में तेल की मात्रा लगभग 30-45 प्रतिशत होती है। तेल से मालिश करने पर त्वचा के दाग-धब्बे, झाइयां और झुर्रियां दूर होती हैं। अलसी का तेल निकालने के बाद जो खली बचती है वह दुधारू जानवरों को अगर खिलाई जाए तो दूध उत्पादन बढ़ जाता है। इसमें सभी वनस्पतियों की तुलना में अधिक ओमेगा-3 होता है तभी इसे चिकित्सा विज्ञान में वेज ओमेगा भी कहते हैं। आयुर्वेद में अलसी को दैविक भोजन माना जाता है। इसमें लगभग 33 से 45 प्रतिशत तेल और 24 प्रतिशत कच्चे प्रोटीन शामिल हैं और यह विभिन्न प्रयोजनों के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले सबसे पुराने व्यावसायिक तेलों में से एक है। इसकी खली दुधारू मवेशी के लिए अच्छा भोजन है और इसे खाद के रूप में भी प्रयोग किया जाता है। इसमें लगभग 3 प्रतिशत तेल और 30 प्रतिशत प्रोटीन होता है।

सारणी 1. अलसी में पोषक तत्वों की मात्रा (प्रति 100 ग्राम)

पोषक तत्व	मात्रा
प्रोटीन	20.3 ग्राम
वसा	37.1 (ओमेगा-3, अल्फा लिनोलेनिक एसिड 18.1 ग्राम, संतृप्त वसा)
ऊर्जा	530 किलो कैलोरी
फाइबर	4.8
विटामिन	थाइमीन, विटामिन बी-5, नाइसीन, राइबोफ्लेविन और विटामिन-सी
खनिज लवण	कैल्शियम, लोहा, पोटेशियम, जिंक और मैग्नीशियम
एंटीऑक्सीडेंट	लाइकोपेन, लिग्नेन, लिउटीन

बीज की मात्रा

सिंचित दशा में 25-30 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर में बुआई हेतु पर्याप्त होते हैं। बारानी क्षेत्रों में बुआई हेतु 30-35 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर पर्याप्त है। धान की खड़ी फसल में बुआई हेतु बीज 35-40 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर से अधिक नहीं होना चाहिए। ऐसा करने से फसल में मृदा जनित रोगों का प्रकोप नहीं होता है।

बुआई की विधि

अलसी की बुआई पंक्तियों में करनी चाहिए। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सें.मी. और प्रत्येक पंक्ति में पौधे से पौधे की दूरी 5 सें.मी. रखनी चाहिए। बिहार व मध्य प्रदेश में अलसी की बुआई धान के खड़े खेतों में भी की जाती है। अच्छे जमाव के लिए बुआई हल या सीडड्रिल द्वारा करनी चाहिए। 4 से 5 सें.मी. की गहराई पर बुआई करनी चाहिए।

फसल चक्र

अलसी को मक्का, ज्वार, बाजरा, मूंगफली, लोबिया व सोयाबीन आदि के साथ फसल चक्र में उगाया जाता है। इसे गेहूं, जौ, सरसों के साथ मिश्रित रूप में भी उगाया जा सकता है। इसे रबी मक्का के साथ भी उगाया जा सकता है।

खाद एवं उर्वरक प्रबंधन

अच्छी उपज के लिए खेत की तैयारी के समय लगभग 8-10 टन गोबर या कम्पोस्ट

खाद मिट्टी में अच्छी तरह से मिला देनी चाहिए। असिंचित दशाओं में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 20-30 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से खेत में देनी चाहिए, जबकि सिंचित दशा में 60 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस व 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से खेत में प्रयोग करनी चाहिए।

जल प्रबंधन

अलसी की अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए दो सिंचाइयां आवश्यक हैं। बुआई के 30-45 दिनों के बाद पहली सिंचाई देनी चाहिए तथा दूसरी सिंचाई 75 दिनों के बाद फूल आने से पहले देनी चाहिए।

खरपतवार नियंत्रण

अलसी की फसल खरपतवार से अधिक प्रभावित होती है, क्योंकि इसकी पत्तियों का क्षेत्र कम होता है। अलसी में खरपतवार उपज व तेल की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं। इससे बचने के लिए कम से कम दो निराई-गुड़ाई क्रमशः बुआई के दो से तीन दिनों और चार से पांच सप्ताह बाद करनी चाहिए। रासायनिक दवाओं के द्वारा भी खरपतवारों का आसानी से नियंत्रण किया जा सकता है। बुआई से पूर्व फ्लूक्लोरलिन एक कि.ग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से 600 लीटर पानी में बने घोल का छिड़काव करके भी खरपतवारों का नियंत्रण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त एलाक्लोर शाकनाशी के एक कि.ग्रा. सक्रिय तत्व को 500-600 लीटर पानी में घोलकर बुआई के तुरंत बाद अंकुरण से पहले छिड़काव करना चाहिए। यह ज्यादातर खरपतवार को नष्ट कर देता है।

कीट एवं रोग प्रबंधन

अलसी की फसल में लगने वाले प्रमुख रोगों में रस्ट, उकठा और चूर्णिल आसिता है। अलसी की फसल कीटों से ज्यादा प्रभावित नहीं होती है। अलसी मिज, कटवर्म और पत्ती खाने वाली सूंडियां कहीं-कहीं पर फसल को हानि पहुंचाती हैं।

कटाई-मड़ाई

अलसी की फसल अच्छी कटाई होने पर अच्छा उत्पादन देती है। प्रायः अलसी की फसल 130-150 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। अलसी के पौधों के तने पीले पड़ जाएं तथा कैप्सूल और पत्तियां सूखनी शुरू हो जाएं और निचले हिस्सों के तनों से पत्तियां गिर जाएं तो यह समझना चाहिए कि फसल कटाई हेतु तैयार है। कटाई हो जाए तो पौधे को बंडल में बांधकर चार से पांच दिनों के लिए धूप में सूखने देना चाहिए। बीज अलग करने के लिए डंडों से पौधों को पीटकर या थ्रेशर का उपयोग करना चाहिए। रेशा प्राप्त करने के लिए अलसी की कटाई, बुआई के लगभग 100 दिनों के बाद करनी चाहिए या फिर फूल आने के एक माह बाद और कैप्सूल जब बन जाए तो उसके दो सप्ताह बाद करनी चाहिए। रेशे के लिए उगाई गई फसल को जड़ से उखाड़ना चाहिए ताकि रेशे की अधिक लंबाई प्राप्त की जा सके। सही समय पर कटाई न होने पर तेल का उत्पादन कम होता है व तेल की गुणवत्ता पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है ।

उपज

सिंचित दशाओं में अलसी की 15-20 क्विंटल बीज प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है, जबकि बारानी दशाओं में 8-10 क्विंटल उपज प्रति हैक्टर प्राप्त की जा सकती है। ■

कैसे जारी रहे पीली क्रांति

पीली क्रांति ने खाद्य तेल संकट की समस्या को हल करने के लिए एक अच्छा समाधान प्रस्तुत किया है। यह कई वैज्ञानिक और विकास संस्थानों, उद्योगों, प्रगतिशील किसानों और नीति निर्माताओं की टीम के काम का भी प्रतीक है। परंतु साथ ही साथ खाद्य तेल के आयात पर भी दबाव बढ़ रहा है, जो कि बहुत चिंता का विषय है। तिलहन उत्पादन को बढ़ावा देने के लिए सामूहिक प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। इसमें कई चुनौतियों का सामना करने के लिए दीर्घकालिक रणनीति को अपनाने की आवश्यकता है, जिसमें सुधार की तकनीक, विविधीकरण और मूल्य वृद्धि के बेहतर तरीकों को अपनाने के माध्यम से क्षेत्रीय विस्तार और उत्पादकता में सुधार के जरिए तिलहन उत्पादन बढ़ाया जा सकता है। ऊर्ध्वाधर विकास पर अधिक जोर देने से यह उत्पादकता में वृद्धि के लिए सहायक हो सकता है, क्योंकि शहरीकरण के लिए क्षैतिज विस्तार के कारण भूमि की कमी और बढ़ती जनसंख्या के कारण अनाज के साथ प्रतिस्पर्धात्मकता बढ़ सकती है।

ओमेगा-3 समृद्ध उत्पाद उपलब्ध

- **ओमेगा-3 दूधः** अभी इसका उत्पादन बड़े पैमाने पर नहीं हो पा रहा है, परंतु जब ओमेगा-3 के प्रति लोगों में जागरूकता बढ़ेगी तो इसका उत्पादन बड़े पैमाने पर संभव हो सकेगा।
- **ओमेगा-3 अंडेः** ये अंडे सम्पूर्ण मात्रा में ओमेगा-3 शरीर में उपलब्ध कराने में सहायक होते हैं।
- **ओमेगा-3 कैप्सूलः** बहुत सी कंपनियां ओमेगा-3 युक्त कैप्सूल का उत्पादन करती हैं। भारत में डेक्कन हैल्थ केअर, हैदराबाद, ऑक्सीप्लेक्स, ओमेगा डेक सॉफ्ट जेल तथा साइन डाइट care अल्फा लाइट नमक उत्पादों का निर्माण कर रही है, जो कि ओमेगा-3 युक्त है।
- **बिस्कुटः** फ्लैक्सयुक्त बिस्कुट आज-कल बाजार में उपलब्ध है।
- **ओमेगा चॉकलेटः** बहुत जल्दी इस उत्पाद की बाजार में आने की संभावना है।

सारणी 2. भारत में प्रमुख अलसी उगाने वाले राज्य

राज्य	क्षेत्रफल (लाख हैक्टर)	उत्पादन (लाख टन)	उपज (कि.ग्रा./हैक्टर)
असोम	0.06	0.04	671
बिहार	0.18	0.15	855
छत्तीसगढ़	0.28	0.10	371
झारखंड	0.26	0.16	612
कर्नाटक	0.20	0.16	333
मध्य प्रदेश	1.12	0.57	503
महाराष्ट्र	0.24	0.05	218
ओडिशा	0.19	0.09	479
उत्तर प्रदेश	0.23	0.11	475
पश्चिम बंगाल	0.07	0.02	317
सम्पूर्ण भारत	2.92	1.43	489

जैविक कीट प्रबंधन से फसल सुरक्षा

शंकर लाल[1] और **अरुण कुमार**[2]

" वनस्पतियों के हरित पदार्थ (क्लोरोफिल) द्वारा सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में पानी और कार्बन डाईऑक्साइड से मिलकर खाद्य पदार्थ का निर्माण 'प्रकाश संश्लेषण' क्रिया द्वारा होता है। यदि जैविक और अजैविक कारकों द्वारा फसलों को क्षति न पहुंचे, तो मनुष्य और पशुओं की खाद्य पदार्थों की आवश्यकता पूरी तो हो ही जाएगी, इसके साथ ही खाद्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में शेष भी बच जाएगा। परंतु ऐसा नहीं हो पाता है और इन जैविक और अजैविक कारकों से आंशिक या पूर्ण रूप से क्षति हो ही जाती है। "

कीट, रोग, खरपतवार, सूत्रकृमि, विषाणु, फफूंदी, लघु जीवाणु (बैक्टीरिया), सूक्ष्मजीवाणु, (माइक्रो ऑर्गनिज्म), माइकोप्लाज्मा, इत्यादि जैविक कारकों में आते हैं।

अजैविक कारक

इसमें ऐसे निर्जीव कारक शामिल हैं; जिनसे फसलों को हानि पहुंचती हैं; जैसे तापमान (गर्म व ठंडा), आर्द्रता, बाढ़, सूखा, अतिवृष्टि, और अनावृष्टि, ओला, पाला और अनुपयुक्त भूमि (अम्लीय, क्षारीय, लवणीय) इत्यादि।

कीटों से फसलों को क्षति

फसलों को सबसे अधिक हानि कीटों से पहुंचती है। इनसे फसल उत्पादन में कमी तो आती ही है, बल्कि गुणों में भी ह्रास होता है।

[1]पूर्व निदेशक, भाकृअनुप–भारतीय दलहन अनुसंधान संस्थान, कानपुर–208024 (उत्तर प्रदेश); [2]तकनीकी अधिकारी, राष्ट्रीय फायट्रोट्रॉन सुविधा, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

मित्र कीट व उनके गुण

वे कीट जो हानिकारक कीटों को खाकर फसल सुरक्षा करते हैं, उनको मित्र कीट कहते हैं। इसके अतिरिक्त वे कीट जो विशेष पदार्थ प्रदान करते हैं, उनको भी मित्र कीट कहते हैं। मधुमक्खी जो कि रात-दिन श्रम करके फूलों से मीठा द्रव्य या मकरन्द (नैक्टर) एकत्रित करके मधु एवं मोम पैदा करती है। इसी तरह से रेशम का कीट विशेष प्रकार की पत्तियों को खाकर रेशम का धागा पैदा करता है। लाख का कीट विशेष वृक्षों से लाख बनाता है। इन कीटों में निम्नांकित गुण पाये जाते हैं:

- ये हानिकारक कीटों को खोजने में सक्षम होते हैं।
- किसी जीव विशेष पर पोषण के लिये आश्रित होते हैं।
- इनमें तीव्र प्रजनन की क्षमता होती है, जिससे ये अपनी संख्या को कम समय में वृद्धि करने में सक्षम होते हैं।
- इनका जीवन चक्र होता है।
- ये वातावरण के अनुरूप ढल जाते हैं।
- दुश्मन कीट के विष का इन पर प्रभाव नहीं होता है।

कीट प्रबंधन की विधियां

इस प्रबंधन में निम्नलिखित विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं:

अजैविक कीट प्रबंधन

इस विधि में बिना जीव के प्रयोग के कीट प्रबंधन किया जाता है जैसे-

- कीट रसायनों का प्रयोग।
- उपयुक्त (संस्तुत) सस्य क्रियाओं का फसल उगाने में प्रयोग।
- कीट अवरोधी प्रजातियों को उगाना।
- अंत:/अंतर फसली पद्धति को अपनाना।
- खेत के चारों तरफ ऐसी फसल को उगाना चाहिये, जिस पर हानिकारक कीट अंडे दें। इस फसल को ट्रैप क्रॉप (विषम परिस्थितियों में दुश्मन कीट का अंदर प्रवेश न कर सकना) भी कहते हैं।

कीटनाशी का छिड़काव

- सूत्रकृमि के नियंत्रण के लिये खेत के चारों तरफ या अंदर मेड़ों पर गेंदा उगाना। ये अपनी जड़ों द्वारा ऐसा महकदार पदार्थ पैदा करते हैं, जिनसे सूत्रकृमि या तो मर जाते हैं या अन्यत्र चले जाते हैं।
- पौधों की ऐसी बाह्य बनावट जिससे दुश्मन कीट आक्रमण न कर सकें। जैसे मटर की बटरी प्रजातियों की पत्ती छोटी, शुष्क और कड़ी होती है। इनमें पर्णखनक कीट (लीफ माइनर) आसानी से प्रवेश नहीं कर पाता है। इसी प्रकार से अरहर में टहनियां और पुष्प गुच्छेदार (प्रजाति आईसीपीएल-151) हैं, क्योंकि इससे पौधे की बनावट मरूका और फलीबेधक कीट को छुपकर अंडा देने में सहायता मिलती है। इसके विपरीत यूपीएएस-120 और आईसीपीएल-181 में यह स्वरूप नहीं होता है और उक्त कीटों से मुक्त रहती हैं। कुसुम में कांटेदार और चिकनी दो प्रकार की प्रजातियां होती हैं। कांटेदार प्रजाति में काली माहूं आक्रमण नहीं कर पाती है। अत: इस कीट के आक्रमण की स्थिति के अनुसार प्रजातियों को चुनना चाहिये।

समय से सस्य क्रियाओं को अपनाकर कीट प्रबंधन

- समय से बुआई न करने से कीटों का आक्रमण बढ़ जाता है। जैसे यदि मटर, राजमा, मसूर और चना की बुआई अगेती में की जाए तो तना मक्खी का प्रकोप बढ़ जाता है। इसी प्रकार चने की बुआई देर से की जाए तो फलीबेधक कीट से अधिक हानि होती है। इसी प्रकार सरसों और सरसों कुल की फसलों की विलंब से बुआई करने पर माहूं का आक्रमण बढ़ जाता है। घनी बुआई से भी कीटों की संख्या बढ़ जाती है।

नाइट्रोजन की अधिक मात्रा का प्रयोग करने से पौधों की पत्तियां अधिक रसीली हो जाती हैं, जिसके कारण रस चूसने वाले कीटों का प्रकोप बढ़ जाता है। इसके विपरीत फॉस्फोरस का अधिक प्रयोग करने से पौधों में कठोरपन बढ़ जाता है और कीटों का आक्रमण भी कम हो जाता है।

अत:/अंतसस्य फसलों को उगाने से भी कीटों का आक्रमण कम हो जाता है। चने की फसल में खेत के चारों तरफ यदि अलसी और धनिया उगाया जाए तो यह ट्रैप फसलों का काम करेगी। फलीबेधक कीट की मादा इन फसलों के फूलों पर अंडा देती है, जिससे फसल कुछ सीमा तक सुरक्षित रहती है। जिन फसलों में, विशेषतौर से सब्जियों के सूत्रकृमि की समस्या हो तो खेत के चारों तरफ गेंदा लगा दें। इससे इस जीव का प्रकोप कम हो जाता है।

कीट प्रबंधन में प्रयोग आने वाले कीट

कीट प्रबंधन के लिए कीट रसायनों का प्रयोग न केवल अधिक खर्चीला होता है, बल्कि नाना प्रकार का प्रतिकूल प्रभाव जल, भूमि और जीवजंतुओं पर पड़ता है। अत: परजीवी और परभक्षी कीटों का प्रयोग कम खर्च वाला और प्रदूषणरहित होता है। ऐसे जन्तुओं और जीवों का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

पृष्ठ दंडधारी शिकारी जीव

इसमें रीढ़दार और स्तनधारी जीव आते हैं, जो कीटों और अन्य जीवों को खाते हैं। इनसे फसलों को क्षति पहुंचती है। इनमें निम्न चार तरह के जीव आते हैं:

- चिड़िया

कीट प्रबंधन में कीट रसायनों का प्रयोग

कीट प्रबंधन का यह अवयव न केवल बहुत खर्चीला होता है, बल्कि इनके अपनाने के दूरगामी दुष्प्रभाव पाए गए हैं:

- इनके प्रयोग से वातावरण प्रदूषित होता है।
- वैज्ञानिक विधि से इनको न अपनाने से मनुष्य और पशुओं को ही नहीं बल्कि फसलों को भी हानि पहुंचती है।
- इनके प्रयोग करने से मित्रकीटों (जैसे शहद की मक्खी, रेशम का कीट, लाख बनाने वाला कीट) को क्षति पहुंचती है। इससे जैव विविधता में असंतुलन पैदा होता है।
- परजीवी व परभक्षी जीव, जो कि दुश्मन कीटों को खा जाते हैं, को भी क्षति पहुंचती है।
- इनके प्रयोग से भूमि भी प्रदूषित हो जाती है, जिसके कारण उसमें वास करने वाले लाभदायक सूक्ष्मजीव (माइक्रो-ऑर्गेनिज्म) जैसे राइजोबियम, एजेटोबैक्टर, वाम, पीएसवी और केंचुओं को भी क्षति पहुंचती है।
- इनके प्रयोग से पानी भी प्रदूषित हो जाता है, जिसके कारण पानी में वास करने वाले जीव जैसे मछली, सांप, मेंढक, कछुआ आदि को भी हानि पहुंचती है।
- लगातार किसी विशेष रसायन के प्रयोग से कीटों में इस रसायन के प्रति अवरोधकता उत्पन्न हो जाती है। इसके फलस्वरूप इस रसायन के प्रयोग से इस कीट पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। यह एक भयावह स्थिति है।
- कीट रसायनों के प्रयोग से जैव विविधता में असंतुलन पैदा हो जाता है और क्षेत्र विशेष के पर्यावरण में भी असंतुलन पैदा हो जाता है, जो कि फसलों के लिए ठीक नहीं होता है।

फसल बढ़ोतरी में उपयोगी जैविक कीट प्रबंधन

- स्तनधारी जीव
- रेंगने वाले जंतु
- उभयचर जंतु

अरीढ़धारी जीव

इनमें रीढ़ की हड्डी नहीं होती है। ये फसलों को हानि पहुंचाने वाले जीवों को पकड़कर खा जाते हैं। इनमें निम्न प्रकार के जीव आते हैं:

- मकड़ी
- शिकारी कीट
- परजीवी भक्षी कीट

पृष्ठधारी शिकारी

- **चिड़िया:** चिड़िया हानिकारक कीट/जंतुओं को खाती है।
- **कौआ:** यह हानिकारक कीटों के वयस्क और गिडारों को खाता है। यही नहीं यह चूहों और मेंढक को भी खा जाता है।
- **मैना और गोरैया:** ये चिड़िया हानिकारक कीटों के गिडारों को चाव से खाती हैं। चना और मटर की फसल में फलीबेधक कीट की गिडारों को फुदक-फुदककर खाती हैं। यदि खेत में कई स्थानों पर लकड़ी के ('टी' के आकार के) मचान बना दिये जाएं तो उन पर चिड़िया बैठेंगी और जैसे ही गिडार दिखाई पड़ती हैं यह तेजी से दौड़कर उनको खा जाएंगी।

बगुला

यह पक्षी नाली और रुके हुये पानी में कीटों और उनके शिशुओं को खा जाता है। यही नहीं यह पानी में विचरण करने वाले जीवों जैसे मेंढक और मछलियों को भी खा जाता है। इसमें विशेष गुण यह है कि मिट्टी में छिपे कीट और उनके शिशुओं को अपनी नुकीली चोंच द्वारा निकालकर आहार बना लेता है। जब खेत में जुताई हो रही हो या सिंचाई की जा रही हो तो मिट्टी में छिपे कीट बाहर निकल आते हैं और बगुला उनको दौड़कर पकड़कर खा जाता है।

चील

यह बहुत तीव्र गति से उड़ने वाली और दूर से देखने वाली चिड़िया है। यह फसल में छिपे जीवों विशेषतौर से चूहे और खरगोश के बच्चों को तेजी से झपटा मारकर अपने पंजों में दबाकर किसी पेड़ पर बैठकर खा जाती है।

उल्लू

यह पक्षी रात में सक्रिय रहता है और रात में उड़ने वाले कीटों को खा जाता है।

मोर

यह हमारा राष्ट्रीय पक्षी है, यह रेंगने वाले जीव जैसे नेवला और गिरगिट इत्यादि को खा जाता है।

गिद्ध

यह सम्पूर्ण मांसाहारी पक्षी है। इसकी दृष्टि दूरगामी होती है। जहां भी शिकार दिखाई देता है वहां यह तीव्रता से उड़कर पहुंचकर उसको खा जाता है। इस पक्षी की भी संख्या धीरे-धीरे कम होती जा रही है।

बटेर व तीतर

इनका दीमक प्रिय भोजन होता है। यह मिट्टी में चोंच के द्वारा दीमक को खोजकर खा जाते हैं। इनसे दीमक को न केवल नियंत्रित किया जा सकता है, बल्कि इन पक्षियों द्वारा दीमक की उपस्थिति का पता लगाया जा सकता है। इसके लिये खेत की अंतिम जुताई करने के बाद खेत में कई स्थानों पर कच्चा गोबर रख दें। यदि भूमि में दीमक हैं तो वह रात में गीली मिट्टी का चोल गोबर के ऊपर बना लेती हैं और चोल के अंदर छिपकर बैठ जाती हैं। यदि ऐसा होता है तो समझना चाहिये कि भूमि में दीमक है। इसलिए दीमक को मारने के लिये उपयुक्त दवा का प्रयोग करना चाहिये। अन्यथा दवा का प्रयोग व्यर्थ होता है और वायुमण्डल प्रदूषित हो सकता है। दीमक नियंत्रण के लिये यह बहुउपयोगी पक्षी है।

स्तनधारी जीव

इनमें चूहा, नेवला और छछुंदर जैसे स्तनधारी जीव हैं, जो फसलों को हानि पहुंचाने वाले जीवों व कीटों को खाकर उनकी सुरक्षा करते हैं। इनमें चूहा और छछुंदर, बिल्ली के प्रिय शिकार हैं, जब कि नेवला, सांप का शत्रु होता है। चूहे से अनाज को भंडार में भारी क्षति पहुंचती है। बिल्ली चूहों को खाकर भंडार में अनाजों की होने वाली क्षति को परोक्ष रूप से बचाती है।

रेंगने वाले जीव

इनमें सांप और छिपकली आते हैं, जो फसलों की सुरक्षा में सहयोग करते हैं। सांप चूहों को खाकर परोक्ष रूप से अनाज को क्षति से बचाते हैं। इसके साथ ही साथ वह कीटों के वयस्क, अंडों और बच्चों को भी खाते हैं। छिपकली खेतों की मेड़ों पर बैठकर गंधी कीट को खा जाती है व वयस्क दीमक (परदार) को चाव से खा जाती है। अत: कीट नियंत्रण में इसकी अहम भूमिका होती है। विषखापड़ भी कीटों को खाकर इनके नियंत्रण में अत्यंत भागीदारी है।

उभयचर जन्तु

मेंढक एक ऐसा जन्तु है, जो जल और थल दोनों में वास करता है। यह अपनी चिपकनी जीभ द्वारा कीटों को अंदर ले जाकर खा जाता है।

अपृष्ठधारी शिकारी

इनमें रीढ़ की हड्डी नहीं होती है, ये दूसरे कीटों को खा जाते हैं। इनमें निम्न जीव आते हैं:

- **मकड़ी:** इसके आठ पैर होते हैं और अपनी लार से धागा बनाकर जाल बनाती है। इसी जाल में कीटों को फंसाकर या तो खा जाती है या जाल में फंसकर कीट मर जाते हैं।
- **परजीवी परभक्षी कीट:** ये शिकारी कीट होते हैं, जो दूसरे कीटों को खा जाते हैं। इनके निम्नलिखित उदाहरण हैं:
- नर कीट, जो पीले रंग का होता है। यह चना फलीबेधक कीट की गिडार को पकड़कर दीवार में कच्ची मिट्टी का घर बना लेता है और उसमें रख लेता है, जिसको यह भविष्य में खा जाता है।
- गेहूं, जौ और जई में भी माहूं का प्रकोप होता है। यह कीट लेडी बर्ड बीटल जो लाल रंग की होती है और उसके ऊपर काले रंग की बूंदें होती हैं। यह उपरोक्त फसलों में लगने वाली माहूं को खा जाती है। अत: यह भी परभक्षी कीट है। उसी तरह ट्राईकोडर्मा फल मक्खी को मार डालते हैं।
- **परजीवी जीव:** ये दूसरे कीटों पर निवास करते हैं और उनको धीरे-धीरे मार डालते हैं। जैसे एनपीवी (न्यूक्लियर पॉली हैड्रोसिस वायरस) चनाबेधक कीट की गिडार पर निवास करके उनको नष्ट कर देती है। यदि मरे हुए गिडार का घोल बनाकर फसल पर छिड़काव किया जाये तो फलीबेधक कीट की गिडार मर जाती है। इससे इस कीट की बढ़ोतरी में गिरावट आ जाती है। ■

अगस्त के मुख्य कृषि कार्य

राजीव कुमार सिंह, विनोद कुमार सिंह, कपिला शेखावत, प्रवीण कुमार उपाध्याय और **एस.एस. राठौर**
सस्य विज्ञान संभाग, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, पूसा, नई दिल्ली-110012

“ अगस्त, जिसे आप श्रावण-भाद्रपद भी कहते हैं, बरसात की झड़ी लगा देता है तथा चारों तरफ हरियाली से भर देता है। खरीफ फसलों की अच्छी पैदावार के लिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण होता है, क्योंकि अधिकतर फसलें इस समय शुरुआती बढ़वार की अवस्था में होती हैं। अगर कुछ कारणों से फसल की बुआई जुलाई में नहीं हो पायी है तो इस समय चारे के लिए फसलों की बुआई कर सकते हैं। जिन क्षेत्रों में पर्याप्त वर्षा अथवा सिंचाई के समुचित साधन हैं, जैसे कि उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्र, पूर्वी और उत्तर-पूर्वी भागों में इस समय धान की फसल मुख्य फसल के रूप में खेतों में होती है। ”

इस समय कई राज्यों में मूंगफली की फसल भी प्रमुख फसल के रूप में उगायी जाती है। इस समय शुष्क और अर्द्धशुष्क मक्का, ज्वार, बाजरा, अरहर, मूंग, उड़द, ग्वार, सोयाबीन व तिल फसलों के सस्य प्रबंधन की आवश्यकता होती है। सब्जी वाली फसलों में कद्दूवर्गीय सब्जी के साथ भिण्डी और अगेती मूली, फूलगोभी भी खेतों में इस समय है। इनमें भी उत्तम प्रबंधन की आवश्यकता होती है। इसलिए इस समय के सभी सस्य प्रबंधन का उद्देश्य, खड़ी फसल के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान कर फसल की उत्तम बढ़वार और उपज को सुनिश्चित करना है।

धान की फसल में देखभाल

- कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण कई बार धान की रोपाई देर से की जाती है। कई बार ऐसा देखा गया है कि वर्षा बहुत अधिक हो जाती है या वर्षा का आगमन देर से होता है। ऐसी परिस्थितियों में जलभराव के कारण समय पर रोपाई संभव नहीं हो पाती है। उपरोक्त दशा में कुछ विशेष सस्य क्रियाओं को अपनाया जाये तो पुरानी पौध के प्रयोग से धान की अच्छी पैदावार प्राप्त की जा सकती है। रोपाई की दूरी घटा देनी चाहिए, जिससे प्रति इकाई पौधों की संख्या बढ़ जाये। ऐसी दशा में धान की रोपाई के लिए पंक्ति से पंक्ति एवं पौधे से पौधे को 20×10 एवं 15×10 सें.मी. दूरी पर लगायें और प्रति स्थान पर 3-5 पौधों की रोपाई करें। धान की देर से पकने वाली प्रजातियों की रोपाई इस समय बंद कर दें। धान में इस समय उर्वरक प्रबंधन महत्वपूर्ण होता है। नाइट्रोजन की बची हुई दो तिहाई मात्रा को दो भागों में समान रूप में डालें। नाइट्रोजन की पहली एक तिहाई मात्रा कल्ले निकलते समय तथा शेष एक तिहाई मात्रा का पुष्पावस्था पर यूरिया खाद के रूप में प्रयोग करना चाहिए। यदि खेत में जिंक की कमी के लक्षण हों तो 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का 0.25 प्रतिशत बुझे हुए चूने के घोल के साथ 2-3 छिड़काव 15-20 दिनों के अंतराल पर करें। जिन क्षेत्रों में धान की सीधी बुआई की जाती है वहां यदि

पौधों में लौह तत्व की कमी दिखाई दे तो 0.5 प्रतिशत फेरस सल्फेट का घोल बनाकर 15 दिनों के अंतराल पर दो से तीन छिड़काव करें।

- साथ ही इस महीने में खरपतवारों के नियंत्रण की भी आवश्यकता होती है और विशेषकर ऊपरी भूमि या सीधी बुआई वाले धान में तो इस समय खरपतवार प्रबंधन अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। धान की फसल में लगभग 47 से 86 प्रतिशत तक का नुकसान खरपतवारों के द्वारा होता है। गीली जुताई (पडलिंग) के पश्चात धान की फसल में खरपतवारों की विशेष समस्या नहीं होती है। खरपतवार निकलने पर उन्हें उखाड़कर खेत में गहरा दबा देते हैं। धान की फसल में सारणी-1 के अनुसार खरपतवारनाशी किसी भी दवा का प्रयोग किया जा सकता है।
- धान की फसल में झुलसा या जीवाणु पर्ण अंगमारी रोग जीवाणु के द्वारा होता है। पौधे की छोटी अवस्था से लेकर परिपक्व अवस्था तक यह रोग कभी भी हो सकता है। इस रोग में पत्तियों के किनारे ऊपरी भाग से शुरू होकर मध्य भाग तक सूखने लगते हैं। सूखे पीले पत्तों के साथ-साथ राख के रंग के चकत्ते भी दिखाई देते हैं। नियंत्रण के लिए (1) नाइट्रोजन की टॉप ड्रैसिंग रोक देनी चाहिए। (2) पानी निकालकर प्रति हैक्टर स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 15 ग्राम या 500 ग्राम कॉपर ऑक्सीक्लोराइड जैसे ब्लाइटॉक्स 50 या फाइटेलान का 500 लीटर पानी में घोल बनाकर 10-12 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव कर देने चाहिए।
- धान की फसल में पत्ती लपेटक, तना छेदक और फुदका कीटों के नियंत्रण के लिए कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 50 एस.पी. 2 ग्राम/लीटर या एसीफेट 75 एस.पी. 2 ग्राम/लीटर या मोनोक्रोटोफॉस 36 एस.एल. को 1.4 लीटर/हैक्टर या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 2 मि.ली./लीटर दवा को 600-800 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें या कारटैप हाइड्रोक्लोराइड 4 जी. 25 कि.ग्रा./हैक्टर या कार्बोफ्यूरॉन 3 जी. 30 कि.ग्रा./हैक्टर की दर से बुरकाव करें। भूरे पौध फुदकों के नियंत्रण के लिए 200 मि.ली. कॉन्फीडोर/हैक्टर को 600-800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

मक्का, ज्वार और बाजरा

- मक्का में बुआई के 40-45 दिनों बाद 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से दूसरी व अन्तिम टॉप ड्रैसिंग नमी होने पर नर मंजरी निकलते समय करनी चाहिए। मक्का में बाली बनते समय पर्याप्त नमी होनी चाहिए अन्यथा उपज 50 प्रतिशत तक कम हो जाती है। सामान्यत: यदि वर्षा की कमी हो तो क्रांतिक अवस्थाओं (घुटने तक की ऊंचाई वाली अवस्था, झंडे निकलने वाली अवस्था, दाना बनने की अवस्था) पर एक या दो सिंचाइयां कर देनी चाहिए, जिससे उपज में गिरावट न हो।

मक्का की प्रजाति पीएचएम-1

ज्वार

- खरीफ के मौसम में खरपतवारों का प्रकोप ज्यादा होता है, जिससे 50-60 प्रतिशत उपज में गिरावट आ सकती है। इसलिए मक्का के खेत को शुरु के 45 दिनों तक खरपतवारमुक्त रखना चाहिए। खरपतवारों के प्रबंधन के लिए 2-3 निराई-गुड़ाई खुरपी या हैंड-हो या हस्तचालित अथवा शक्तिचालित यंत्रों से खरपतवारों को नष्ट करने से मृदा में पड़ने वाली पपड़ी भी टूट जाती है और पौधों की जड़ों को अच्छे वायु संचार से बढ़वार में मदद मिलती है।

बाजरा

बाजरा की बुआई अगस्त के प्रथम पखवाड़े तक पूरी कर लें। बुआई के 15-20 दिनों बाद विरलीकरण करके कमजोर पौधों को निकालकर लाइन में पौधों के आपस की दूरी 10-15 सें.मी. कर लेनी चाहिए। संकर/उन्नत प्रजातियों में 85-108 कि.ग्रा. यूरिया की टॉप ड्रैसिंग/हैक्टर की दर से करें। बाजरे की फसल में फूल आने की स्थिति में सिंचाई करना लाभप्रद होता है। वर्षा न होने की स्थिति में 2-3 सिंचाइयों की आवश्यकता होती है। पौधों में फुटान होते समय, बालियां निकलते समय तथा दाना बनते समय नमी की कमी नहीं होनी चाहिए। बाजरा जलप्लावन से भी प्रभावित होता है। अत: ध्यान रहे कि खेत में पानी इकट्ठा न होने पाये। खरपतवार नियंत्रण के लिए एक कि.ग्रा. एट्राजिन/हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव बुआई के बाद तथा अंकुरण से पूर्व करते हैं।

खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण के लिए एट्राजिन की 1-1.5 कि.ग्रा./हैक्टर मात्रा का छिड़काव करके भी नियंत्रित किया जा सकता है। एट्राजिन की आवश्यक मात्रा को 800 लीटर पानी में घोल बनाकर बुआई के बाद परंतु जमाव से पहले छिड़क देना चाहिए।

- रोगों को रोकने के लिए रोगरोधी प्रजातियों की समय से बुआई करनी चाहिए, जबकि मेडिस, टर्सिकम लीफ ब्लाइट की रोकथाम के लिए 2.5 कि.ग्रा./हैक्टर जिनेब को 800 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। यदि रोग की रोकथाम न हो तो 10-15 दिनों के अंतराल पर दूसरा छिड़काव अवश्य कर देना चाहिए। मक्का की फसल में पत्ती लपेटक कीट की रोकथाम के लिए क्लोरोपायरीफॉस एक मि.ली. पानी में मिलाकर या इमानेकटिन बेंजोएट एक मि.ली. लीटर दवा 4 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।
- दाने के लिए ज्वार की फसल में विरलीकरण (थिनिंग) करके पंक्तियों में पौधे से पौधे की दूरी 15-20 सें.मी. अवश्य कर दें। विरलीकरण का कार्य करने के बाद उन्नत/संकर प्रजातियों में 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रैसिंग बुआई के 30-35 दिनों बाद खड़ी फसल में छिड़क दें। असिंचित दशा में 2 प्रतिशत यूरिया का 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर खड़ी फसल में छिड़काव करना अत्यंत लाभप्रद पाया गया है। ज्वार की फसल में पौधों की वृद्धि, फूल तथा दाना बनते समय सिंचाई करना आवश्यक होता है। ज्वार की फसल के लिए सिंचाई देने की चार क्रान्तिक अवस्थाएं हैं-प्रारंभिक बीज पौधे की अवस्था, भुट्टे निकलने से पहले, भुट्टे निकलते समय व भुट्टों में दाना बनने की अवस्थाएं। ज्वार की अच्छी उपज लेने के लिए बुआई के 3 सप्ताह बाद निराई-गुड़ाई करने से खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ भूमि में वायु का संचार होता है तथा भूमि में नमी भी सुरक्षित रहती है। यदि किसी कारणवश निराई-गुड़ाई संभव न हो तो बुआई के तुरंत बाद एट्राजिन नामक खरपतवारनाशी का 0.75-1.0 कि.ग्रा. 700-800 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।
- तना मक्खी ज्वार का एक प्रमुख कीट है। इसका प्रकोप पौधों के जमाव के लगभग 7 से 30 दिनों तक होता है। कीट की इल्लियां उगते हुए पौधों की गोफ को काट देती हैं, जिससे शुरू की अवस्था में ही पौधे सूख जाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए फोरेट 10 जी. या कार्बोफ्यूरॉन 3 जी बुआई के समय 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से कूंड़ों में डालना चाहिए।
- मण्डुआ, झंगोरा, रामदाना, और कुट्टू की फसल में तनाछेदक कीट का प्रकोप होता है। इसके नियंत्रण के लिये क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी की 20 मि.ली. दवा प्रति नाली की दर से 15-20 लीटर पानी में घोल कर छिड़काव करें।
- तनाछेदक कीट से बचाव के लिए कार्बेरिल 2.5 मि.ली. लीटर दवा का घोल प्रति लीटर 500 लीटर पानी में मिलाकर या लिन्डेन 6 प्रतिशत ग्रेन्यूल अथवा कार्बोफ्यूरॉन 3 प्रतिशत ग्रेन्यूल 20 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। 8 ट्राइकोकार्ड प्रति हैक्टर लगाने से भी इसकी रोकथाम की जा सकती है।

दलहनी फसलों की देखभाल

- उड़द व मूंग की शीघ्र पकने वाली किस्मों की बुआई करें। इसके लिये मूंग की पी.डी.एम.-54, नरेन्द्र मूंग-1,

मूंग पूसा विशाल

पन्त मूंग-2, पन्त मूंग-4, पन्त मूंग-5 एवं उड़द के लिये पन्त उड़द-35, पन्त उड़द-31, पंत उड़द-19, पन्त उड़द-40, नरेन्द्र उड़द-1 की बुआई कर सकते हैं। यदि मृदा की जांच नहीं कराई गई है तो 10-15 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा 40 कि.ग्रा. फॉस्फोरस प्रति हैक्टर की दर से बुआई के समय कूंड़ों में डालना चाहिए। अरहर, मूंग, उड़द व लोबिया-इस प्रकार की दलहनी फसलों में फूल आने पर मिट्टी में हल्की नमी बनाये रखें। इससे फूल झड़ेंगे नहीं तथा अधिक फलियां लगेंगी व दाने भी मोटे तथा स्वस्थ होंगे। परंतु खेतों में वर्षा का पानी खड़ा नहीं होना चाहिए तथा जल निकास अच्छा होना चाहिए।

अरहर

इस समय अरहर की फसल में उकठा, फाइटोफ्थोरा, अंगमारी व पादप बांझ रोग की रोकथाम के लिए 2.5 मि.ली. डाइकोफॉल दवा एक लीटर पानी में घोलकर एवं 1.7 मि.ली. डाइमेथोएट दवा एक लीटर पानी में घोलकर पौधों पर छिड़काव करें। जिस खेत में उकठा रोग का प्रकोप अधिक हो उस खेत में 3 से 4 साल तक अरहर की फसल नहीं लेनी चाहिए। अरहर के साथ ज्वार की सहफसल लेने से काफी हद तक उकठा रोग का प्रकोप कम हो जाता है। ट्राईकोडर्मा 4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज को उपचारित करना चाहिए। इन दलहनी फसलों में फलीछेदक कीड़े का प्रकोप भी इसी महीने आता है। इसके लिए जब 70 प्रतिशत फलियां आ जाएं तो मोनोक्रोटोफॉस 36 एस एल को 300 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें। जरूरत पड़ने पर 15 दिनों बाद फिर छिड़काव कर सकते हैं।

अरहर पूसा-16

उड़द शेखर-2

- बुआई के प्रारंभिक 4-5 सप्ताह तक खरपतवार की समस्या अधिक रहती है। पहली सिंचाई के बाद निराई करने से खरपतवार नष्ट होने के साथ-साथ भूमि में वायु का संचार भी होता है, जो मूल ग्रन्थियों में क्रियाशील जीवाणुओं द्वारा वायुमण्डलीय नाइट्रोजन एकत्रित करने में सहायक होता है। खरपतवारों के रासायनिक नियंत्रण हेतु 2.5-3.0 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर बुआई के 2 से 3 दिनों के अंदर अंकुरण के पूर्व छिड़काव करने से 4 से 6 सप्ताह तक खरपतवार नहीं निकलते हैं। चौड़ी पत्ती तथा घास वाले खरपतवार को रासायनिक विधि से नष्ट करने के लिये पेन्डीमेथिलीन (30 ई.सी.) 3.30 लीटर या एलाक्लोर 4 लीटर या फ्लूक्लोरोलिन (45 ई.सी.) नामक रसायन की 2.20 लीटर मात्रा को 800 लीटर पानी में मिलाकर बुआई के तुरन्त बाद या अंकुरण से पहले छिड़काव कर देना चाहिए। अत: बुआई के 15-20 दिनों के अंदर कसोले से निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों को नष्ट कर देना चाहिए।
- उड़द, मूंग एवं अरहर की फसल में पीला मोजैक की रोकथाम के लिए डाइमोथेएट (30 ई.सी.) एक लीटर या मिथाइल-ओं-डिमिटान (25 ई.सी.) एक लीटर मात्रा को 600-800 लीटर पानी में घोलकर आवश्यकतानुसार 10-15 दिनों के अंतराल पर 2-3 छिड़काव करें। या इमिडाक्लोरोप्रिड 0.5 मि.ली./लीटर पानी 500 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

सोयाबीन, मूंगफली, सूरजमुखी और तिल

- सोयाबीन और तिल में भी खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ होने वाले प्रमुख रोगों और कीटों को नष्ट करने के लिए उपाय करने चाहिए। सोयाबीन की फसल पर पीला मोजैक रोग का विशेष प्रभाव पड़ता है। इसकी रोकथाम के लिए डाईमेथोएट (30 ई.सी.) या मिथाइल-ओं-डिमेटान (25 ई.सी.) की एक लीटर मात्रा को 800-1000 लीटर पानी में घोलकर आवश्यकतानुसार 10-15 दिनों के अंतराल पर 1-2 छिड़काव करें। खेत में दीमक का प्रकोप दिखाई देने पर मोनोक्रोटोफॉस (36 ई.सी.) 750 मि.ली. या क्लोरोपायरीफॉस (20 ई.सी.) 2.5 लीटर या क्यूनालफॉस (25 ई.सी.) 1.5 लीटर दवा को 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

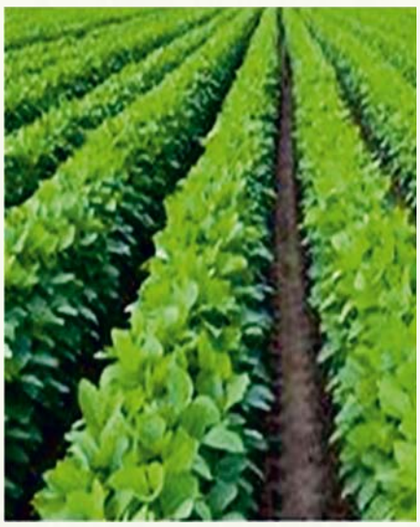

सोयाबीन

मूंगफली

- मूंगफली की फसल में बुआई के 35-40 दिनों तक पुष्पावस्था से पेगिंग के होते हैं। इस समय पर पानी की कमी होने पर मूंगफली की उत्पादकता काफी कम हो जाती है। इसलिए इस समय यदि वर्षा नहीं होती है तो सिंचाई की व्यवस्था करनी चाहिए। इस समय यदि पेगिंग हो गयी है तो पौधों के चारों ओर मिट्टी चढ़ाने का कार्य करने से फली का विकास अच्छा होता है और पैदावार में बढ़ोतरी होती है। इस समय सूक्ष्म पोषक तत्व जैसे बोरॉन की कमी दिखने पर 0.2 प्रतिशत बोरेक्स के घोल का प्रयोग करें। इसी प्रकार

सारणी: विभिन्न रसायनों की मात्रा और छिड़काव करने का समय

रसायन	सक्रिय तत्व की मात्रा (कि.ग्रा./लीटर/हैक्टर)	पानी की मात्रा (लीटर/हैक्टर)	छिड़काव करने का उपयुक्त समय
पेन्डीमेथेलिन	1.0-1.5	500-600	रोपाई या बुआई के 1 से 2 दिनों बाद छिड़काव करें
ऑक्सीडायर जाइल	0.080-0.100	500-600	रोपाई या बुआई के 2 से 3 दिनों बाद छिड़काव करें
पाइराजोसल्फ्यूरॉन इथाइल 10 डब्ल्यू.पी.	0.020-0.025	600-700	रोपाई या बुआई के 1 से 2 दिनों बाद छिड़काव करें
प्रेटिलाक्लोर+सेफनर	0.750	600-700	रोपाई या बुआई के 3 से 5 दिनों बाद छिड़काव करें
बिसपाईरीबैक सोडियम 10 एस.सी. (नोमिनी गोल्ड)	0.020-0.025	600-700	रोपाई या बुआई के 25 से 30 दिनों बाद छिड़काव करें
पेन्डीमेथेलिन एवं उसके बाद बिसपाईरीबैक सोडियम	1.0.1.5 उसके बाद 0.025	500-600	रोपाई या बुआई के 1 से 2 दिनों तथा रोपाई या बुआई के 20-25 दिनों छिड़काव करें
ईथोक्सीसल्फ्यूरान 15 डब्ल्यू.डी.जी.	30 ग्राम	600-700	20-25 दिनों बाद छिड़काव करें
साइहेलोफोप ब्यूटाइल 10 ई.सी.	75-80	600-700	10-20 दिनों बाद छिड़काव करें
एजिमसल्फ्यूरॉन 50 डी.एफ.	70	600-700	50-60 दिनों बाद छिड़काव करें2

सूरजमुखी

सूरजमुखी की फसल में बुआई के 15-20 दिनों बाद फालतू पौधे निकालकर पंक्तियों में पौधे से पौधे की दूरी 20 सें.मी. करें। बुआई के 25 दिनों बाद 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन प्रति हैक्टर की दर से टॉप ड्रैसिंग करें। फसल की बुआई के 40-45 दिनों बाद दूसरी निराई-गुड़ाई के साथ पौधों पर 15-20 सें.मी. मिट्टी चढ़ा दें। बुआई के 20 से 25 दिनों बाद पहली सिंचाई के बाद निराई-गुड़ाई करना अति आवश्यक है। इससे खरपतवार पर नियंत्रण होता है। रसायनों द्वारा खरपतवार नियंत्रण के लिए पेन्डीमेथिलीन 30 ई.सी. की 3.3 लीटर मात्रा 600 से 800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से बुआई के 2-3 दिनों के अंदर छिड़काव करने से खरपतवारों का जमाव नहीं होता है। पहली सिंचाई बुआई के 20 से 25 दिनों बाद हल्की या स्प्रिंक्लर से करनी चाहिए, बाद में आवश्यकतानुसार 10 से 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करते रहना चाहिए। कुल 5 या 6 सिंचाइयों की आवश्यकता पड़ती है। फूल निकलते समय और दाना भरते समय बहुत हल्की सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है, जिससे पौधे जमीन में गिरने न पाएं। क्योंकि जब दाना पड़ जाता है तो सूरजमुखी के फूल के द्वारा पौधे पर बहुत ही वजन आ जाता है, जिससे कि पौधा गिर सकता है।

जिंक की कमी होने पर 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट और 0.25 प्रतिशत चूने का प्रयोग करना चाहिए।

गन्ने की फसल में देखभाल

- वर्षा न होने की स्थिति में 15 दिनों के अंतराल पर सिंचाई करें। हल्की मिट्टी वाले क्षेत्र में फसल को गिरने से बचाने तथा देर से फूटने और कल्लों को निकलने से रोकने के लिए वर्षा प्रारंभ होते ही पौधे की जड़ों पर अच्छी तरह मिट्टी चढ़ा देनी चाहिए। अगस्त-सितंबर में फसल की बंधाई कर देनी चाहिए, ताकि फसल गिरने न पाए, क्योंकि फसल गिरने से उपज तथा गन्ने में शक्कर की मात्रा दोनों कम हो जाती हैं। गुरदासपुर बेधक एवं सफेद मक्खी के प्रभावी नियंत्रण हेतु जल निकास की व्यवस्था करें तथा मोनोक्रोटोफॉस 36 ई.सी. या क्लोरोपायरीफॉस 20 ई.सी. 1-1.5 लीटर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें। अगस्त में गन्ने पर चढ़ने वाले खरपतवार यथा आइपोमिया प्रजाति (बेल) की बढ़वार होती है, जिसे खेत से उखाड़कर फेंक दें अथवा मेट सल्फ्यूरॉन मिथाइल 4 ग्राम प्रति हैक्टर की दर से 500-600 लीटर पानी में घोल बनाकर जब इसमें छोटे पौधे खेत में दिखाई पड़े प्रयोग करना चहिये।

सब्जी वाली फसलों का उत्पादन एवं प्रबंधन

- खरीफ मौसम में टमाटर की पूसा सदाबहार, पूसा रोहिणी, पूसा-120, पूसा गौरव, पी.एच.-2 और पी.एच.-8 की रोपाई कर सकते हैं।
- हरी प्याज की रोपाई से पूर्व 20-25 टन सड़ी गोबर की खाद या 8 टन नाडेप कम्पोस्ट खेत में मिला दें तथा अन्तिम जुताई के बाद 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से खेत में अच्छी तरह मिला दें।
- शिमला मिर्च, टमाटर एवं गोभी की मध्यमवर्गीय प्रजातियों की पौधशाला में बिजाई पूरे साप्ताहिक अंतराल पर कर सकते हैं।
- बैंगन, मिर्च व भिण्डी की फसलों में निराई-गुड़ाई व जल निकास तथा रोग एवं कीटों से रोकथाम की व्यवस्था करें। बैंगन में रोपाई के 30 दिनों बाद 50 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, मिर्च में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन तथा फूलगोभी में 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन की टॉप ड्रैसिंग प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।
- इस समय बैंगन में कोक्सीनेल्ला बीटल का प्रकोप होता है। इसकी रोकथाम के लिए क्विनाल्फॉस 2 एम.एल. प्रति लीटर की दर से छिड़काव करना चाहिए। साथ ही शूट और फ्रूट बोरर के लिए कार्बोरिल 2 ग्राम प्रति लीटर की दर से प्रयोग करना चाहिए।
- पूसा संकर-3 लौकी की बुआई अगस्त तक की जा सकती है और इस किस्म में लौकी की तुड़ाई 50-55 दिनों में शुरू हो जाती है।
- कद्दूवर्गीय सब्जियों में प्रति हैक्टर 25 कि.ग्रा. नाइट्रोजन या 54 कि.ग्रा. यूरिया को दो भागों में बांटकर बुआई के 30 एवं 45 दिनों बाद टॉप ड्रैसिंग करें। कद्दूवर्गीय सब्जियों में मचान बनाकर उस पर बेल चढ़ाने से पैदावार में वृद्धि होगी और फल स्वस्थ होंगे। सभी सब्जियों में उचित जल निकास की व्यवस्था करें।
- गाजर की पूसा मेघाली, पूसा यमदाग्नि व पूसा वृष्टि एवं मूली की पूसा चेतकी व पूसा देसी किस्मों की बुआई अगस्त तक की जा सकती है, जो कि 40-50 दिनों में तैयार हो जाती हैं।

बागवानी फसलों का उत्पादन एवं प्रबंधन

- मानसून के समय बागानों में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए। साथ ही लगातार बागों में निगरानी रखें और रोग आदि के लक्षण दिखने पर शीघ्र उपचार करें।
- आम के बागों से फलों की तुड़ाई के बाद पेड़ों की रोग वाली और फालतू शाखाओं की कटाई-छंटाई करें। रोग व सूखी टहनियों को काट कर जला दें। नये पेड़ों में 500 ग्राम नाइट्रोजन प्रति

भिण्डी

भिण्डी की फसल में बुआई के 50 दिनों बाद 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन या 87 कि.ग्रा. यूरिया प्रति हैक्टर की दर से दूसरी टॉप ड्रैसिंग करें एवं भिण्डी की कटाई सही समय पर करें। सामान्यता फूल आने के 8-10 दिनों के भीतर भिण्डी की फली

की तुड़ाई अवश्य करें। फली छेदक कीड़ों के प्रकोप से बचने के लिए मैलाथियान (50 ई.सी.) की 500-600 मि.ली. मात्रा का छिड़काव करते हैं। विशेष ध्यान रखें कि कीटनाशी का प्रयोग करने के 7-8 दिनों तक फली की तुड़ाई न करें।

फूलगोभी

अगस्त में फूलगोभी की अगेती किस्में जैसे-पूसा शरद, पूसा संकर-2, पूसा मेघना, पूसा पौषजा, पूसा शुक्ति प्रजातियों की बुआई के लिए नर्सरी तैयार करें। नर्सरी तैयार करने के लिए मिट्टी को कवकनाशी जैसे फार्मेल्डिहाइड की 25-30 मि.ली. मात्रा एक लीटर पानी में मिलाकर नर्सरी वाले क्षेत्र में छिड़कना चाहिए। नर्सरी को पॉलीथीन शीट से ढक दें और इसके करीब 15 दिनों बाद बुआई करें। फूलगोभी की मध्यमवर्गीय प्रजातियों की रोपाई के लिए प्रति हैक्टर 20-25 टन सड़ी गोबर की खाद या 8 टन नाडेप कम्पोस्ट खेत की तैयारी के समय तथा 40 कि.ग्रा. नाइट्रोजन, 60 कि.ग्रा. फॉस्फोरस और 40 कि.ग्रा. पोटाश अंतिम जुताई या रोपाई से पूर्व खेत में अच्छी तरह मिला दें। फूलगोभी की फसल में डैम्पिंग ऑफ के नियंत्रण के लिए एप्रॉन एस.डी. 35 या थिरम 2 ग्राम/कि.ग्रा. बीज की दर से बीजोपचार तथा एंथ्रेक्नोज के लिये डायथेन एम-45 या बाविस्टीन 2 ग्राम/लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।

फूलगोभी की अगेती किस्म पूसा शरद

पेड़ की दर से प्रयोग करें। आम में शल्क कीट तथा शाखा गांठ कीट की रोकथाम के लिए मिथाइल पैराथियान एक मि.ली. या डाई मेथोएट 1.5 मि.ली. दवा प्रति लीटर पानी में से किसी एक दवा का 15 दिनों के अंतराल पर बदलकर दो बार छिड़काव करें। तराई क्षेत्रों में आम के पौधों पर गांठ बनाने वाले कीड़े गॉल मेकर की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस 0.5 प्रतिशत या डाईमेथोएट 0.06 प्रतिशत दवा का छिड़काव करें। आम के पौधों पर लाल रतुआ एवं श्यामव्रण (एंथ्रोक्नोज) के रोग पर कॉपर ऑक्सीकक्लोराइड 0.3 प्रतिशत दवा का छिड़काव करें।

- आम एवं लीची में रेडरस्ट और सूटी मोल्ड की रोकथाम के लिए कॉपर ऑक्सीक्लोराइड की 30 ग्राम प्रति लीटर या ब्लाइटॉक्स 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर) का छिड़काव पेड़ों पर करें। लीची की फसल में लीफ माइनर की रोकथाम के लिए मेटासिस्टॉक्स 2 मि.ली. प्रति लीटर का प्रयोग करें। लीची की छाल को खाने वाले कीड़ों की रोकथाम के लिए इनके द्वारा बनाए गए छिद्रों में क्लोरोफार्म पेट्रोल या केरोसिन को रूई की मदद से उपचार कर नष्ट करना चाहिए।
- नीबू में सिट्रस कैंकर रोग, जिसमें रोग के लक्षण पत्तियों से प्रारंभ होकर बाद में टहनियों, कांटों और फलों पर आ जाते हैं, की रोकथाम के लिए गिरी हुई पत्तियों को इकट्ठा कर नष्ट कर दें तथा रोगयुक्त टहनियों की काट-छांट कर बोर्डो मिश्रण (5:5:50) का छिड़काव करें। ब्लाइटॉक्स 0.3 प्रतिशत (3 ग्राम दवा प्रति लीटर पानी में घोलकर) का छिड़काव पेड़ पर करें। नीबूवर्गीय फलों में रस चूसने वाले कीड़े आने पर मेलाथियान 2 मि.ली./लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

अमरूद

अमरूद के पौधों का रोपण 5X5 मीटर की दूरी पर करना चाहिए और पौध लगाते समय प्रति गड्ढा 25-30 कि.ग्रा. गोबर की खाद डालनी चाहिए। इसके लिए प्रथम वर्ष में 260 ग्राम यूरिया, 375 ग्राम सिंगल सुपर फॉस्फेट और 500 ग्राम पोटेशियम सल्फेट प्रति पौधा डालना चाहिए। इसके बाद आयु की दर से उर्वरकों का प्रयोग करना चाहिए। अमरूद में वर्षा के समय की फसल से पैदावार तो अधिक मिलती है, किन्तु गुणवत्ता खराब होती है। इसलिए इस मौसम में फल न लेकर शरद ऋतु में लेने के लिए आवश्यक कृषि कार्य करने चाहिए।

- पपीते के पौधों पर फूल आने के समय 2 मि.ली. सूक्ष्म तत्वों को एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।
- बेर में मिलीबग कीट की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफॉस (36 ई.सी.) 1.5 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

गुलाब

पुष्प व सुगंध वाले पौधों का प्रबंधन

- गुलाब की नर्सरी स्टॉक की क्यारियों में बदलाई करें। गुलाब की फसल में जल निकास की व्यवस्था करें तथा आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई करते रहें।
- रजनीगंधा, ग्लोडियोलस में आवश्यकतानुसार सिंचाई, निराई-गुड़ाई करें तथा पोषक तत्वों के मिश्रण का छिड़काव करें एवं रजनीगंधा के स्पाइक की समय पर कटाई करें।

ग्लोडियोलस

- फूलों के खेतों में वर्षा का पानी निकालने का इंतजाम करें। फूलों में

रजनीगंधा

आवश्यकतानुसार निराई-गुड़ाई कर खरपतवारों को समय पर निकालते रहें। ■

आवरण पृष्ठ II का शेष

मणिपुर का लोकताक झील के पास जनजीवन

बड़ा स्रोत होने की वजह से आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण है। इनमें ट्रैपा नटैन बिस्पिनोसा, युरील फेरोक्स, जिजियाना लतिफोलिया, अल्पाइनिया अल्लुगस, नम्पपेला अल्बा शामिल हैं, जबकि पौधों की तरह फ्राग्मीट्स कार्का, इरिएनथस छत और लीर्सिया हेक्जेंड्रा के लिए उपयोग किया जाता है। सैक्युओलीपीस मायोसुरॉयड्स को चारे के रूप में उपयोग किया जाता है। फूम्डीज का गठन करने वाली पौधों की प्रजातियों का उपयोग चारा, भोजन और ईंधन, झोपड़ी निर्माण, बाड़ लगाने और औषधीय उद्देश्य के रूप में किया जाता है। विशेष रूप से पशु चिकित्सा, दवाएं और हस्तशिल्प में इनका प्रयोग बहुतायत से होता है। झील 24,000 खेतों, पनबिजली, शहर के निवासियों और मत्स्य पालकों के पीने के पानी के लिए व सिंचाई के लिए महत्वपूर्ण आर्थिक संसाधन है। झील में मछली पकड़ने को एकत्रीकरण की पुरानी पद्धति के माध्यम से पूरा किया जाता है और मानवनिर्मित अस्थायी द्वीपों द्वारा कैप्चर किया जाता है। मछुआरों के समुदाय को नामीमेसी कहा जाता है, जो फूम्डीज पर बनाये गये फॉमसग नामक फ्लोटिंग झोपड़ियों में रहते हैं। फूम्डीज प्रवासी, पेलैजिक और निवासी मछलियों के बड़े मंडल का समर्थन करता है, जो इन अस्थायी द्वीपों को संभावित प्रजनन आधार के रूप में उपयोग करते हैं। इस झील का मनोरंजक महत्व है। यह अपने सौंदर्य के कारण प्रसिद्ध पर्यटन स्थल है। मणिपुर की लोकताक झील, पूर्वोत्तर में सबसे बड़ी ताजे पानी की झील है। यह फ्लोटिंग प्राथमिक विद्यालय का पहला घर बन गई है। यह एक गैर-सरकारी संगठन पीपुल्स रिसोर्स डेवलपमेंट एसोसिएशन (पीआरडीए) के समर्थन से सभी लोकताक झील मछुआरे संघ द्वारा की गई एक पहल के तहत खोला गया। इसका प्रमुख उद्देश्य बीच में शिक्षा छोड़ने वालों को शिक्षा प्रदान करना है, जो अपघटन के विभिन्न चरणों में फूम्डीस या फ्लोटिंग बायोमास के वनस्पति, मिट्टी और कार्बनिक पदार्थों के हालिया निकासी के कारण बेघर हो गए थे।

पारिस्थितिक कृषि एवं मछली पालन

लोकताक झील के उत्तर में फूम्डीज की मोटी परत पानी की गुणवत्ता को कायम रखती है। एन.पी.के. जैसे महत्वपूर्ण पोषक तत्वों के लिए सिंक और कार्बन मुख्य रूप से कार्य करता है। फ्लोटिंग आइलैंड सबसे अधिक उत्पादक पारिस्थितिक तंत्र हैं, क्योंकि इससे लोगों को रहने का स्रोत मिलता है। यह झील कई पक्षियों, मछलियों, उभयचरों और संगई की भी प्रजनन स्थल है। यह झील राज्य की स्थानीय जलवायु को नियंत्रित करती है। इसके अलावा यह भूजल को रिचार्ज करती है। तूफान के पानी को बरकरार रखती है और पानी की गुणवत्ता बनाए रखने के लिए प्रदूषक का कम करती है। लोकताक झील अपनी जैव विविधता और निवास स्थान की विविधता के लिए जानी जाती है। यह अत्यधिक उत्पादक जलीय पारिस्थितिकी तंत्र है। इसी झील में प्रचुर मात्रा में मछलियों का उत्पादन होता है, जो कि मणिपुर के लोगों का प्रमुख भोजन स्रोत है। लोकताक झील से ही मणिपुर राज्य के पांच जिलों के कृषक फसलों की सुविधापूर्वक सिचांई करते हैं एवं प्रचुर मात्रा में धान एवं सब्जियों का उत्पादन करके और जीविकापार्जन करते हैं।

वन्यजीवों की बहुलता झील के समीप

पंजीकरण संख्या 14252/57 पंजीयक, समाचार पत्र, भारत सरकार
दिल्ली पोस्टल पंजीकृत संख्या DL(C)-12/1145/10-12
ISSN 0023-1088
मूल्य: ₹30

भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के प्रकाशन

JOURNALS

HANDBOOKS

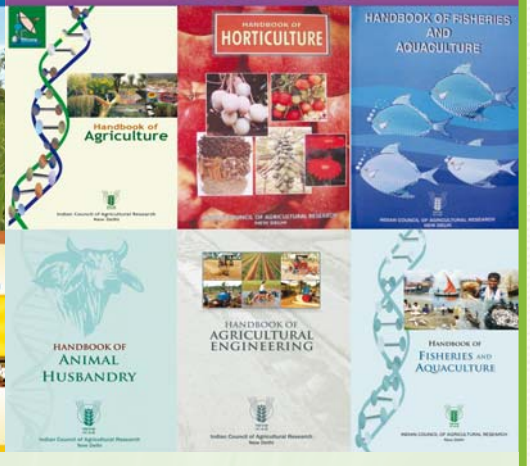

भाकृअनुप
ICAR

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें:
व्यवसाय प्रबंधक
कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद-I, पूसा, नई दिल्ली 110 012
टेलिफैक्स: 91-11-25843657; ई-मेल: bmicar@icar.org.in
वेबसाइट: www.icar.org.in

डा. सतेन्द्र कुमार सिंह, परियोजना निदेशक, कृषि ज्ञान प्रबंध निदेशालय द्वारा भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली के लिए प्रकाशित तथा मैसर्स चन्दु प्रेस, 63, पटपड़गंज इंडस्ट्रियल एस्टेट, दिल्ली 110 092 से मुद्रित। सम्पादक: अशोक सिंह